कलस गुजराती तौरेत

श्री तारतम वाणी

कलस गुजराती

टीका व भावार्थ

श्री राजन स्वामी

प्रकाशक

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

नकुड़ रोड, सरसावा, सहारनपुर, उ.प्र.

www.spjin.org

सर्वाधिकार सुरक्षित (चौपाई छोड़कर)

© २०१६, श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रस्ट

पी.डी.एफ. संस्करण – २०१९

अनुक्रमणिका

1	रासनो प्रकास थयो	9
2	आ रामतना तमने (रामत देखाडी छे)	45
3	ए रामत मांहें जे रामतो (रामतमां वली रामत – खेल में खेल)	64
4	कोई कहे दान मोटो (पंथ पैंडोंनी खेंचाखेंच)	75
5	अनेक किव इहां उपजे (वैराटनी जाली)	87
6	वेद मोटो कोहेडो (वेदनी जाली)	106
7	एह छल तां एवो हुतो (अवतारोंना प्रकरण)	127

8	आ जुओ रे आ जुओ रे (गोकुल लीला)	156
9	मारा सुंदरसाथ आधार (प्रकरण जोगमायानूं)	185
10	हो वालैया हवे ने हवे (दयानूं प्रकरण)	202
11	मारा साथ सनमंधी चेतियो (प्रकरण हांसीनूं)	219
12	हवे जागी जुओ मारा साथजी (जागणीनूं प्रकरण)	230

प्रस्तावना

प्राणाधार श्री सुन्दरसाथ जी! अक्षरातीत श्री राज जी का हृदय ज्ञान का अनन्त सागर है। उसकी एक बूँद श्री महामति जी के धाम हृदय में आयी, जो सागर का स्वरूप बन गयी। इसलिये कहा गया है कि **"नूर सागर सूर मारफत, सब दिलों करसी रोसन"**, अर्थात् यह तारतम वाणी मारिफत के ज्ञान का सूर्य है। यह ब्रह्मवाणी सबके हृदय में ब्रह्मज्ञान का उजाला करती है।

"हक इलम से होत है, अर्स बका दीदार" का कथन अक्षरशः सत्य है। इस ब्रह्मवाणी की अलौकिक ज्योति सुन्दरसाथ के हृदय में माया का अन्धकार कदापि नहीं रहने देगी। इस तारतम वाणी की थोड़ी सी भी अमृतमयी बूँदों का रसास्वादन जीव के लिये परब्रह्म के साक्षात्कार एवं अखण्ड मुक्ति का द्वार खोल देता है। अतः वैश्विक

स्तर पर इस ब्रह्मवाणी का प्रसार करना हमारा कर्तव्य है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये यह आवश्यक है कि अनेक भारतीय भाषाओं में अवतरित इस ब्रह्मवाणी का टीका सरल भाषा में प्रस्तुत हो। यद्यपि वर्तमान में अनेक सम्माननीय मनीषियों की टीकायें प्रचलित हैं, किन्तु ऐसा अनुभव किया जा रहा था कि एक ऐसी भी टीका हो, जो विश्लेषणात्मक हो, सन्दर्भ, भावार्थ, स्पष्टीकरण, एवं टिप्पणियों से युक्त हो।

मुझ जैसे अल्पज्ञ एवं अल्प बुद्धि वाले व्यक्ति के लिये यह कदापि सम्भव नहीं था, किन्तु मेरे मन में अचानक ही यह विचार आया कि यदि सन्त कबीर जी और ज्ञानेश्वर जी अपने योगबल से भैंसे से वेद मन्त्रों का उच्चारण करवा सकते हैं, तो मेरे प्राणवल्लभ अक्षरातीत मुझसे तारतम वाणी के टीका की सेवा क्यों नहीं करवा

सकते? इसी आशा के साथ मैंने अक्षरातीत श्री जी के चरणों में अन्तरात्मा से प्रार्थना की।

धाम धनी श्री राज जी एवं सद्गुरू महाराज श्री रामरतन दास जी की मेहेर की छाँव तले मैंने यह कार्य प्रारम्भ किया। सरकार श्री जगदीश चन्द्र जी की प्रेरणा ने मुझे इस कार्य में दृढ़तापूर्वक जुटे रहने के लिये प्रेरित किया। श्री प्राणनाथ जी की पहचान के सम्बन्ध में जनमानस में अनेक प्रकार की भ्रान्तियाँ फैली रहती हैं। धाम धनी की कृपा से होने वाली इस टीका से उन भ्रान्तियों का समाधान हो सकेगा, ऐसी मैं आशा करता हूँ।

सभी सम्माननीय पूर्व टीकाकारों के प्रति श्रद्धा सुमन समर्पित करते हुए, मैं यह आशा करता हूँ कि यह टीका आपको रुचिकर लगेगी। सभी सुन्दरसाथ से

निवेदन है कि इसमें होने वाली त्रुटियों को सुधारकर मुझे भी सूचित करने की कृपा करें, जिससे मैं भी आपके अनमोल वचनों से लाभ उठा सकूँ एवं अपने को धन्य-धन्य कर सकूँ।

आप सबकी चरण-रज

राजन स्वामी

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

सरसावा

श्री कुलजम सरूप

निजनाम श्री कृष्ण जी, अनादि अछरातीत।

सो तो अब जाहेर भए, सब विध वतन सहीत।।

कलस गुजराती – तौरेत

हब्शा में रास, प्रकाश गुजराती, और षटऋतु के पश्चात् कलश गुजराती की प्रारम्भिक दो चौपाइयाँ उतरी थीं। जब श्री जी वि.सं. १७३२ में सूरत पधारे, तो वहाँ पर कलश गुजराती का अवतरण हुआ। यह वही कलश ग्रन्थ है, जिसे पढ़कर बिहारी जी ने "क्लेश" कहा था। वस्तुतः यह ज्ञान कलश है, जिसके द्वारा व्रज, रास, जागनी, एवं श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप की पहचान होती है।

रासनो प्रकास थयो, ते प्रकासनो प्रकास।

ते ऊपर वली कलस धरूं, तेमां करूं ते अति अजवास।।१।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि रास ग्रन्थ में "महारास" का वर्णन हो गया है। इस जागनी ब्रह्माण्ड में लीला करने वाले धाम धनी के स्वरूप की पहचान "प्रकाश" ग्रन्थ में हुई है। इन ग्रन्थों के ऊपर कलश के रूप में इस कलश ग्रन्थ को रखती हूँ, जिसमें मैं धाम धनी की कृपा से अलौकिक ज्ञान का उजाला कर रही हूँ।

मारा साथ सुणो एक वातडी, कह्यो सतनो में सार।

ए सारनो सार देखाडी, जगवुं ते मारा आधार।।२।।

मेरे सुन्दरसाथ जी! मेरी एक बात सुनिये। मैंने सत्य (रास) ज्ञान का सार (प्रकाश) कह दिया है। अब उसका भी सार कलश ग्रन्थ के रूप में देकर मैं अपने प्राणाधार

सुन्दरसाथ को जगाना चाहती हूँ।

श्री धणिए आवी मूने धामथी, जगवी ते जुगतें करी।
ते विध सर्वे रूदे अंतर, चित माहें चोकस धरी।।३।।

परमधाम से आकर धाम धनी ने मुझे बहुत ही युक्तिपूर्वक जगाया। इस लीला की वास्तविकता को मैंने चित्त को एकाग्र करके बहुत ही सजगता से अपने हृदय में बसा रखा है।

मूने मेलो थयो मारा धणी तणो, ते वीतकनी कहूं विध।
ते विध सर्वे कही करी, दऊं ते घरनी निध।।४।।

अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत से मेरा किस प्रकार मिलन (साक्षात्कार) हुआ, उस घटनाक्रम की वास्तविकता को मैं दर्शा रही हूँ। सभी तथ्यों को प्रकट करने के पश्चात् मैं

परमधाम की निधि (तारतम का रहस्य) दूँगी।

में जे दिन चरण परसिया, मूने कहयूं तेहज दिन।
दया ते कीधी अति घणी, पण मूने जोर थयूं सुपन।।५।।

मैं जिस दिन सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के चरणों में गयी, उन्होंने मुझसे उसी दिन जागनी के सम्बन्ध में कहा। उन्होंने मुझे जगाने के लिये मेरे ऊपर बहुत कृपा की, किन्तु उस समय मेरे ऊपर माया का बहुत ही गहरा प्रभाव था।

मोहे समागम पिउसों, वाले पूछियो विचार।
आपोपूं तमे ओलखी, प्रगट कहो प्रकार।।६।।

श्यामा जी (श्री देवचन्द्र जी) कहती हैं कि श्याम जी के मन्दिर में जब श्री राज जी ने मुझे दर्शन दिया, तो उन्होंने

मुझसे मेरे विचारों के सम्बन्ध में पूछा कि क्या आप अपने को पहचानते हैं? आप इस सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से बताइये।

भावार्थ– पाँचवी चौपाई तक श्री इन्द्रावती जी का प्रसंग है, किन्तु इसके पश्चात् सद्गुरू धनी श्री देवचन्द्र जी की धाम धनी से होने वाली वार्ता दर्शायी गयी है।

आ मंडल तां तमे जोइयूं, कहो वीतकनी जे वात।

आ भोमनो विचार कही, ए सुपन के साख्यात।।७।।

आपने इस मायावी भूमिका को देखा है। इसमें आपके साथ जो कुछ भी घटित हुआ है, उसे बताइये। इस जगत के विषय में आप अपने विचार बताइये कि यह स्वप्नमयी है या साक्षात् (ब्रह्म रूप) है?

आ जोई जे तमे रामत, कहो रामत केही पर।

आ भोम केही तमे कोण छो, किहां तमारा घर।।८।।

आपने माया का जो खेल देखा है, उसके विषय में बताइये कि यह कैसा है? यह कैसी भूमिका है? आप कौन हैं और आपका घर कहाँ है?

आ कीहे अस्थानक तमे आवियां, जागीने करो विचार।

नार तूं कोण पिउ तणी, कहो एह तणो विस्तार।।९।।

आप जाग्रत होकर इस बात का विचार कीजिए कि आप यहाँ किस स्थान से आये हैं? आप किस प्रियतम की अर्धांगिनी हैं? इसे विस्तारपूर्वक बताइये।

तमे वीतकनूं मूने पूछ्यूं, सुणो कहूं तेणी वात।

आ मंडल तां दीसे सुपन, पण थई लाग्यूं साख्यात।।१०।।

अब श्री श्यामा जी की ओर से उत्तर दिया जाता है– आपने मुझसे इस संसार के अपने अनुभव के विषय में पूछा है, तो उसे सुनिये। मैं आपको उस सम्बन्ध में बता रही हूँ। यह जगत स्वप्नमयी है, किन्तु साक्षात् (अखण्ड) की तरह प्रतीत होता है।

निकल्यूं न जाय ए मांहेंथी, क्याहें न लाभे छेह।

एमां पग पंखीनों दीसे नहीं, कहूं सनंध सर्वे तेह।।११।।

इस संसार–सागर से किसी भी प्रकार निकला नहीं जाता है और न कहीं इसका अन्त ही मिलता है। इसमें पक्षी के पैर के समान कुछ भी मार्ग नहीं दिखायी देता। इस प्रकार, इस ब्रह्माण्ड की वास्तविकता को मैं आपसे

बता रही हूँ।

भावार्थ– किसी वृक्ष पर बैठे पक्षी को दूर से देखने पर सामान्यतः पक्षी तो दिखायी देता है, किन्तु पैर की आकृति छोटी होने से वे नहीं दिखायी देते। इसी प्रकार संसार के अस्तित्व के सम्बन्ध में कोई संशय नहीं है, किन्तु इसके सार तत्व या इससे पार होने का मार्ग प्राप्त नहीं होता है।

आ भोमने नव ओलखूं, नव ओलखूं मारूं आप।
घर तणी मूने सुध नहीं, सांभरे नहीं मारो नाथ।।१२।।

मैं यह भी नहीं जानती कि यह कैसी भूमिका है। मैं स्वयं अपने स्वरूप के विषय में भी नहीं जानती, न तो मुझे अपने मूल घर की कोई सुधि है, और न अपने प्रियतम की ही मुझे याद है।

आ मंडल दीसे छे पाधरा, एतां मूल विना विस्तार।
रामतनो कोई कोहेडो, न आवे ते केमें पार।।१३।।

यद्यपि यह ब्रह्माण्ड सीधा (साधारण) सा दिख रहा है, किन्तु बिना मूल के ही इसका विस्तार है। यह मायावी ब्रह्माण्ड ऐसा धुन्ध (कुहरा) है, जिससे किसी भी प्रकार से पार नहीं पाया जा सकता।

आ मंडल मोटो रामत घणी, जुओ ऊभो केम अचंभ।
एणे पाइए पगथी जिहां जोइए, तिहां दीसे ते पांचे थंभ।।१४।।

यह संसार बहुत बड़ा (अनन्त) है। इसमें जीवों के तरह-तरह के खेल हैं। देखिये! यह ब्रह्माण्ड कितने आश्चर्यजनक ढंग से स्थित है। इस ब्रह्माण्ड से परे जाने के लिये मार्ग की खोज में जहाँ भी देखिये, वहाँ पाँच तत्व (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी) रूपी पाँच स्तम्भ

दिखायी देते हैं, जिनके ऊपर यह ब्रह्माण्ड खड़ा है अर्थात् जिनसे बना है।

पांचे ते जोइए ज्यारे जुजवा, न लाभे केहेनो पार।
भेला ते करी वली जोइए, तो रची ऊभो संसार।।१५।।

यदि इन पाँचों को अलग-अलग करके देखते हैं, तो मात्र शून्य-निराकार का आभास होता है और जिसका कोई अन्त ही नहीं है। यदि इन्हें पुनः एकत्रित करके देखते हैं, तो सामने संसार दिखायी देता है।

मांहें थंभ एके थिर नहीं, फरे ते पांचे फेर।
एनो फेरवणहार लाधे नहीं, मांहें ते अति अंधेर।।१६।।

इन पाँचों में एक भी तत्व अखण्ड नहीं है। इन पाँच तत्वों के मेल से ब्रह्माण्ड का चक्र चलता है। संसार में

अज्ञानता का इतना अधिक अन्धकार फैला है कि इस सृष्टि चक्र को चलाने वाले (अव्याकृत ब्रह्म) के विषय में किसी को भी कोई ज्ञान नहीं है।

पांचे ते फरे फेर जुजवा, थाय नहीं पग थोभ।
ए अजाडी कोई भांतनी, ते नहीं जोवा जोग।।१७।।

सृष्टि की स्थिति में ये पाँचों तत्व दिखायी देते हैं, पुनः प्रलय में अलग हो जाते हैं। इनके अस्तित्व का कोई अखण्ड आधार नहीं है। इस मायावी जगत का अन्धकार ही कुछ इस प्रकार का है कि वह देखने योग्य नहीं है।

भावार्थ– कारण प्रकृति से महत्तत्व, अहंकार, तन्मात्रा, तत्पश्चात् पाँच तत्वों की उत्पत्ति होती है, किन्तु कारण प्रकृति मोहमयी है जो स्वाप्निक है। इसलिये उपरोक्त चौपाई में पाँचों तत्वों के अस्तित्व को अखण्ड आधार से

विहीन कहा गया है।

ए अजाडी बंध उथमें, बांधी नाखे तत्काल।
द्रष्ट दीठे बंध पडे, एहेवी देखीती जमजाल।।१८।।

माया का यह अन्धकार ऐसा है कि जिसमें जीव तृष्णा के उलटे बन्धनों से बँधा हुआ है। विषयों के चिन्तन (देखने) मात्र से यह माया तत्काल अपने बन्धनों में बाँध लेती है। वस्तुतः यह मृत्यु की जाली के रूप में दिखायी देती है।

काली ते रात कोई उपनी, सूझे नहीं सल सांध।
दिवस तिहां दीसे नहीं, मांहें ते फरे सूरज ने चांद।।१९।।

माया रूपी यह अज्ञानमयी रात्रि ऐसी उत्पन्न हुई है, जिससे बाहर निकलने का कोई मार्ग ही नहीं दिखायी दे

रहा है। यद्यपि इसमें सूर्य और चन्द्रमा तो घूमते हुए दिखायी दे रहे हैं, किन्तु इससे पार करने वाला ज्ञान रूपी दिन कहीं भी दिखायी नहीं दे रहा है।

द्रष्टव्य– उपरोक्त चौपाई में सूर्य और चन्द्रमा स्वप्नमयी बुद्धि के उन ग्रन्थों के प्रतीक हैं, जिनसे अखण्ड धाम का ज्ञान नहीं प्राप्त हो पा रहा है।

दिवस नहीं अजवास नहीं, ए अंधेरना तिमर।

एणे कांई सूझे नहीं, आ भोम आप न घर।।२०।।

मायाजन्य अज्ञानता का अन्धकार ऐसा है कि न तो इसमें ज्ञान रूपी दिन है और न उसका प्रकाश ही फैला हुआ है। इस संसार में किसी को भी यह ज्ञात नहीं हो पा रहा है कि यह संसार क्या है, वह कौन है, तथा उसका मूल घर कहाँ है?

अउठ कोट सूरज फरे, फरे रात ने प्रभात।

एकवीस ब्रह्मांड इंडा मधे, एके मांहें न थाय अजवास।।२१।।

साढ़े तीन करोड़ योजन में सूर्य का प्रकाश फैलता है, जिससे दिन और रात्रि का चक्र चलता है। इस ब्रह्माण्ड में २१ लोक हैं, किन्तु एक में भी अखण्ड ज्ञान का प्रकाश नहीं है।

भावार्थ– चौपाई का उपरोक्त ३.५ करोड़ योजन का कथन श्रीमद्भागवत् के अनुसार है, जो श्री देवचन्द्र जी ने श्रवण के माध्यम से जाना था। इसे अक्षरातीत के कथन के रूप में नहीं लेना चाहिये। वर्तमान समय की वैज्ञानिक गणना में यह ३.५ x ४ x २ = २८ करोड़ कि.मी. होता है।

विदित हो कि सूर्य अपने सौर मण्डल सहित आकाशगंगा (ग्लैक्सी) के केन्द्र की परिक्रमा ८ लाख

कि.मी. प्रति घण्टा या ९० सैकेण्ड में २०००० कि.मी. की दूरी की माप से २२५ x १०००००० वर्षों में पूरा करता है। इससे सूर्य द्वारा ग्लैक्सी के केन्द्र की परिक्रमा के पथ की लम्बाई का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। कलस हि. १/१४ के अनुसार साढ़े तीन करोड़ योजन पृथ्वी पर सूर्य का प्रकाश फैलता है, जिसमें दिन–रात होते हैं।

१४ लोकों के अतिरिक्त ७ सुरति लोक होते हैं (कबीर साहित्य के मतानुसार), इस प्रकार ये २१ लोक होते हैं। सात सुरति होती हैं। प्रकृति मण्डल में इनके सात लोक मान लिया जाता है। सात शून्यों की अवधारणा दार्शनिक तथ्यों के विपरीत प्रतीत होती है। शून्य अवयवविहीन अति सूक्ष्म पदार्थ है। उसका विभाजन नहीं हो सकता। सूक्ष्मतम् मोह तत्व से स्थूल

पदार्थों में व्याप्त आकाश तक शून्य के सात स्तर अवश्य हो सकते हैं, जो इस प्रकार हैं– १. मोह तत्व २. कारण प्रकृति ३. महत्तत्व ४. अहंकार ५. तन्मात्रा ६. सूक्ष्म आकाश ७. स्थूल पदार्थों में व्यापक आकाश।

किन्तु यह कहना उचित नहीं है कि चौदह लोक, अहंकार, तथा महत्तत्व के ऊपर एक–एक करके सात रंगों वाले सात शून्य हैं, जिनसे सात स्वर उठा करते हैं। शून्य में प्रत्यक्षतः रंग या शब्द गुण नहीं हो सकता। शब्द गुण आकाश तत्व का है।

सुध एणे थाय नहीं, सामूं रदे थाय अंधेर।
अजवास ए पोहोंचे नहीं, दीठे चढे सामा फेर।।२२।।

किसी को भी इस ब्रह्माण्ड की सुधि नहीं होती, उलटा हृदय में संशय का अन्धकार भरा रहता है। अखण्ड धाम

का ज्ञान भी प्राप्त नहीं होता, किन्तु संसार की ओर देखने पर पुनः भ्रम के शिकार बन जाते हैं।

फरे खटरूत ऊष्णकाल, वरखा ने सीतकाल।
नखत्र तारे फरे मंडल, फरे जीवने जंजाल।।२३।।

संसार में शीत, उष्ण, एवं वर्षा काल की छः ऋतुएँ सदा परिवर्तित होती रहती हैं। नक्षत्र, तारे, सभी आकाश मण्डल में घूमते रहते हैं। जीव इसी प्रपञ्च में फँसा रहता है।

वाए बादल गाजे विजली, जलधारा न समाय।
फेर खाय पांचे पाधरा, मांहेंना मांहें समाय।।२४।।

कभी–कभी तेज हवायें बहने लगती हैं, बादल छा जाते हैं, विद्युत चमकने लगती हैं, और इतनी अधिक वर्षा

होती है कि जल पृथ्वी में समा नहीं पाता (संग्रहित होकर ऊपर दिखायी देने लगता है)। स्पष्ट रूप से ये सभी पाँचों तत्व एक–दूसरे में परिवर्तित होते रहते हैं, अर्थात् सृष्टि रचना के प्रारम्भ से आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार, जल की भाप से बादल का बनना, पुनः उससे विद्युत अथवा जल का प्रकट होना भी देखा जाता है।

पांचे ते थई आवे पाधरा, जाणूं थासे ते प्रलेकाल।
बल देखाडी आपणूं, थई जाय पंपाल।।२५।।

जब पाँचों तत्व अपने उग्र रूप में आते हैं, तो ऐसा लगता है कि अभी महाप्रलय हो जायेगा। ये थोड़ी देर के लिये अपनी शक्ति दिखाकर पुनः निश्चेष्ट (शान्त) हो जाते

हैं।

भावार्थ– तीव्र आँधी, भयंकर अग्निकाण्ड, बादलों की भयंकर गर्जना के बाद मूसलाधार वर्षा का होना, भूकम्प एवं ज्वालामुखी का फूटना भयंकर दृश्य उपस्थित करते हैं। उपरोक्त चौपाई में इसी ओर संकेत किया गया है।

पांचे ते थई आवे दोडतां, देखाडवा आकार।

ततखिण ते दीसे नहीं, परपंच ए निरधार।।२६।।

निश्चित रूप से यह जगत इतना मिथ्या है कि कभी तो ये पाँचों तत्व अपने रूप को प्रकट करने के लिये दौड़ते हुए आते हैं, किन्तु दूसरे ही क्षण अदृश्य भी हो जाते हैं।

भावार्थ– अचानक ही तपते हुए सूर्य का दिखना, थोड़ी ही देर में बादलों का घिर आना और वर्षा करके पुनः अदृश्य हो जाना, इसी प्रसंग से सम्बन्धित है।

ए पांचे थकी जे उपना, दीसे ते चौद भवन।

जीवन मांहें लाधे नहीं, जेनी इछाए उतपन।।२७।।

इन पाँच तत्वों से ही चौदह लोक का यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ है। जिस ब्रह्म की इच्छा से यह सम्पूर्ण जगत उत्पन्न हुआ है, उसे संसार के लोग अपने सम्पूर्ण जीवन में अज्ञानता के कारण ही प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

एहनूं मूल डाल लाधे नहीं, ऊभो ते केणी अदाए।

मांहें संध कोई सूझे नहीं, एमां दिवस न देखूं क्यांहें।।२८।।

इस संसार रूपी वृक्ष की न तो जड़ें दिखायी पड़ती हैं और न डालियाँ। यह पता ही नहीं चल पाता कि किस प्रकार उलटे मुँह (ऊपर जड़ें और नीचे डालियाँ) स्थित है? अज्ञानता के अन्धकार से परिपूर्ण इस जगत में कहीं भी इससे परे जाने का न तो मार्ग दिख रहा है, और न

ज्ञान रूपी दिन का वह प्रकाश ही दिख रहा है जिसमें सत्य को खोजा जा सके।

सुर असुर मांहें फरे, पसु पंखी मनख।
मछ कछ वनराय फरे, फरे जीव ने जंत।।२९।।

इस सृष्टि में सुर-असुर, मनुष्य, पशु, पक्षी, मछली, कछुआ आदि जीव-जन्तु तथा तरह-तरह की वनस्पतियों का अस्तित्व है।

गिनान नी इहां गम नहीं, सब्द न पामे सेर।
गिनान दीवो तिहां सूं करे, ब्रह्मांड आखो अंधेर।।३०।।

स्वप्नमयी बुद्धि का ज्ञान अखण्ड का बोध नहीं करा पाता। नश्वर जगत के शब्द भी निराकार से परे का वर्णन नहीं कर पाते हैं। जब चौदह लोक के इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड

में सर्वत्र अन्धेरा ही अन्धेरा है, तो भला स्वप्नमयी बुद्धि का ज्ञान रूपी दीपक कितना प्रकाश कर सकता है।

कोहेडो काली रातनो, एमां पग न काढे कोए।

अनेक करे अटकलो, पण बंध न छूटे तोहे।।३१।।

यह कुहरा अज्ञानता की उस काली रात्रि का है, जिसमें कोई एक कदम भी नहीं चल पाता। बहुत से ज्ञानीजन अनुमान से सत्य को खोजने का प्रयास करते हैं, किन्तु माया के बन्धनों से वे मुक्त नहीं हो पाते।

तिमर घोर अंधेर काली, अने अंधेरनो नहीं पार।

मोंह लगे मोहजल भरयूं, असत ने आसाधार।।३२।।

अज्ञानता की काली रात्रि का घना अन्धकार इस प्रकार छाया हुआ कि उसकी कोई सीमा ही नहीं है। मुख तक

मोह–माया रूपी जल लहरा रहा है कि जो निश्चित रूप से मिथ्या है।

पांचे ते उतपन मोहनीं, मोह तो अगम अपार।
नेत नेत कही निगम वलिया, आगल सुध न पडी निराकार।।३३।।

इन पाँच तत्वों की उत्पत्ति मोह से ही हुई है। यह इतना अनन्त है कि कोई भी जीव इसका उल्लंघन नहीं कर पाता। वेदों के व्याख्यान ग्रन्थों (ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद आदि) में ज्ञानीजनों ने ब्रह्म को उस समय "नेति–नेति" कह दिया, जब उन्हें निराकार से परे की सुधि नहीं हो सकी।

एमां पग पंथज जोवंतां, बंध पड्या ते जाण सुजाण।
अनेक वचन विचार कही, नेठ लेवाणा निरवाण।।३४।।

इस ब्रह्माण्ड से परे जाने का मार्ग खोजने वाले ज्ञानीजनों के पैरों में भी बन्ध पड़ जाते हैं, यद्यपि वे किसी भी स्थिति में मुक्ति की इच्छा रखते थे और ब्रह्म के सम्बन्ध में उन्होंने अपने अनेक उत्कृष्ट विचारों को भी प्रस्तुत किया है।

एमां जेम जेम जोई जोई जोइए, तेम तेम बंध पडता जाय।
अनेक उपाय जो कीजिए, प्रकास केमे नव थाय।।३५।।

इस संसार में जैसे-जैसे परब्रह्म की खोज करते हैं, वैसे-वैसे माया के बन्धन और अधिक दृढ़ होते जाते हैं। माया से निकलने के लिये भले ही कोई कितने भी उपाय क्यों न कर ले, किन्तु उसके हृदय में वास्तविक सत्य (ब्रह्म) का प्रकाश नहीं हो पाता।

अनेक बुध इहां आछटी, अनेक फरवया मन।

अनेक क्रोधी काल क्रांत थईने, भाज्या ते हाथ रतन।।३६।।

इस संसार में बहुत से ज्ञानीजनों की बुद्धि भ्रमित हो गयी, अनेक भक्तजनों के मन भटक गये, तथा बहुतों को क्रोधी काल ने अपने अधीन कर लिया अर्थात् वे मृत्यु के वशीभूत हो गये। इस प्रकार, ये सभी ज्ञानी एवं भक्तजन अपने अनमोल रत्न रूप मानव तन को निरर्थक ही खो बैठे।

किहां थकी अमें आवियां, अने पड्या ते अंधेर मांहें।

जीवन जोत अलगी थई, मांहेंथी न केमे निसराय।।३७।।

इस नश्वर जगत में हम कहाँ से आये हैं और अज्ञानता के इस भवसागर में क्यों आ गये, यह खोजते-खोजते उनका सम्पूर्ण जीवन बीत गया, किन्तु इस भवसागर से

वे किसी भी प्रकार से नहीं निकल सके।

ए मंडल धणी त्रैगुण कहावे, जाणूं इहांथी टलसे अंधेर।
पार वाणी बोले अटकलें, तेणे उतरे नहीं फेर।।३८।।

ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव इस ब्रह्माण्ड के स्वामी कहे जाते हैं। मैंने यह सोचा कि सम्भवतः इनके ज्ञान से अज्ञानता का अन्धकार समाप्त हो जायेगा, किन्तु मैंने यही देखा कि निराकार से परे अखण्ड धाम के सम्बन्ध में ये भी अनुमान से ही कहते हैं। इसलिये इनके ज्ञान से भी कोई भवसागर से पार नहीं हो सकता।

एनों बार उघाडी पाधरू, चाली न सके कोय।
ब्रह्मांडना जे धणी कहावे, ते बांध्या रामत जोय।।३९।।

इस ब्रह्माण्ड का द्वार खोलकर कोई भी इसके परे नहीं

जा सका है। इस ब्रह्माण्ड के स्वामी कहे जाने वाले ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव भी इस माया के खेल को देखकर इसमें बँध गये।

बीजा फरे छे फेरमां, एने फेर नहीं लगार।
पण बांध्या बंध जे खरी गांठे, आव्या ते मांहें अंधार।।४०।।

जबकि दूसरे जीव जन्म–मरण के चक्र में भटकते रहते हैं। इन त्रिदेवों का प्रलय होने तक कभी भी पुनर्जन्म नहीं होता, किन्तु इन्होंने माया के इतने मजबूत बन्धन बाँध रखे हैं कि ये भी मोह सागर के अन्धकारमयी बन्धनों में ही पड़े रहते हैं।

ए जेणे बांध्या तेणे छूटे, तिहां लगे न आवे पार।
पार सुध पामे नहीं, कोई कोहेडो अंधार।।४१।।

माया के इन बन्धनों को जिसने (ब्रह्म ने) बाँधा है, एकमात्र वही खोल सकता है। बन्धनों से मुक्त हुए बिना इस मायावी ब्रह्माण्ड का कोई पार नहीं पा सकता। अज्ञानता के अन्धकार का इतना घना कुहरा फैला हुआ है कि संसार में कोई भी वैकुण्ठ–निराकार से परे का ज्ञान नहीं जानता।

बुध विना इहां बंधाई, पडिया ते सहु फंद मांहें।
ए वचन सुणी करी, एणे समे ते ग्रही मारी बांहें।।४२।।

जाग्रत बुद्धि के ज्ञान के बिना संसार के सभी लोग माया के बन्धनों से बन्धे हुए हैं। ऐसे विकट समय में मेरे इन वचनों को सुनकर प्रियतम अक्षरातीत ने श्याम जी के मन्दिर में आवेश स्वरूप से साक्षात् प्रकट होकर मुझे दर्शन दिया और मुझे अंगीकार किया (बाँह पकड़ी)।

बांहें ग्रही बेठी करी, आवेस दीधो अंग।

ते दिन थीं दया पसरी, पल पल चढते रंग।।४३।।

अब श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि प्रियतम अक्षरातीत ने हब्शा में मुझे दर्शन देकर जाग्रत किया और अपनी अर्धांगिनी के रूप में मुझे अंगीकार किया। वे मेरे धाम-हृदय में अपने आवेश स्वरूप से विराजमान हो गये।

विशेष- कलस हि. ९/४ में भी यही चौपाई श्री महामति जी के सम्बन्ध में कही गयी है। यर्थाथता यह है कि धाम धनी को दोनों तनों से लीला करनी थी, इसलिये उन्होंने दोनों तनों में विद्यमान आत्माओं (श्यामा जी एवं श्री इन्द्रावती जी) को दर्शन दिया और उनके धाम-हृदय में अपने आवेश स्वरूप से विराजमान होकर लीला की। श्यामा जी ने अपने दूसरे तन (मिहिरराज) में भी लीला की। अतः उपरोक्त चौपाई को

दोनों स्वरूपों के सम्बन्ध में प्रयुक्त कर सकते हैं।

ओलखी इंद्रावती, वाले प्रगट कह्यूं मारू नाम।
आ भोम भरम भाजी करी, देखाड्या घर श्री धाम।।४४।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि जब मैं सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के चरणों में सर्वप्रथम गयी, तो उन्होंने देखते ही मुझे पहचान लिया और मुझे प्रत्यक्ष रूप में इन्द्रावती कहकर पुकारा। उन्होंने तारतम ज्ञान के प्रकाश में इस संसार के मेरे सभी संशयों को दूर किया तथा मूल घर परमधाम की पहचान करा दी।

घर देखाडी जगवी, आप आवी आवार।
कर ग्रहीने कंठ लगाडी, त्यारे हूं उठी निरधार।।४५।।

आपने हब्शा में प्रत्यक्ष दर्शन देकर (आकर) मुझे जाग्रत

किया और मेरी आत्मिक दृष्टि को खोलकर परमधाम का साक्षात्कार कराया। उन्होंने जब मेरा हाथ पकड़कर मुझे गले से लगाया, तो मैं पूर्ण रूप से जाग्रत हो गयी।

भावार्थ– हाथ पकड़कर गले लगाने का कथन भावात्मक है। इसका अभिप्राय होता है– धाम धनी द्वारा श्री इन्द्रावती जी के हृदय में अपार प्रेम भरकर उन्हें माया से पृथक कर देना।

भोम भली खेडी करी, जल सींचियूं आधार।
वली बीज मांहें वावियूं, सुणो सणगानों प्रकार।।४६।।

मेरे जीवन के आधार प्रियतम अक्षरातीत (सद्गुरू धनी श्री देवचन्द्र जी) ने मुझे जागनी कार्य के लिये उपयुक्त पात्र (धरती) माना। उन्होंने तारतम ज्ञान की चर्चा से मेरे संशयों को दूर करके जागनी की भूमिका तैयार की।

तत्पश्चात् हब्शा में विरह–प्रेम के जल से सिंचित करके वाणी–अवतरण का बीज बोया। हे साथ जी! अब अँकुरित होकर बढ़ने वाले उस पौधे के विषय में सुनिये।

अंधेर भागी असत उड्यूं, उपनूं तत्व तेज।
जनम जोत एवी थई, जे सूझे रेजा रेज।।४७।।

मेरे हृदय से संशयात्मक अन्धकार भाग गया और अज्ञान पूर्ण रूप से नष्ट हो गया। अब तारतम वाणी का तेजोमय स्वरूप प्रकट हो जाने से मुझे परमधाम का ऐसा ज्ञान हो गया है कि वहाँ का एक–एक कण अब मुझे प्रत्यक्ष रूप से दिखायी पड़ रहा है।

कमाड छाडया कोहेडे, उघाड्या सर्व बार।
रामत थई सर्व पाधरी, ए अजवालूं अपार।।४८।।

मेरे हृदय में अखण्ड ज्ञान का ऐसा अनन्त उजाला हो गया है कि मैंने संशयात्मक ज्ञान के दरवाजों को छोड़कर सबके लिये परमधाम के ज्ञान का द्वार खोल दिया है। अब सभी सुन्दरसाथ के लिये माया का यह खेल बहुत ही सरल हो गया है।

भावार्थ– जो अपने हृदय में परमधाम और युगल स्वरूप की छवि को बसा लेगा, माया उसका कुछ भी अहित नहीं कर सकेगी। इसे ही खेल का सरल होना कहते हैं।

सणगूं उठ्यूं ते सतनो, असत भागी अंधेर।
आपोपूं में ओलख्यूं, भाग्यो ते अवलो फेर।।४९।।

अब सत्य ज्ञान (तारतम वाणी) का पौधा विकसित हो रहा है, जिससे अज्ञानता का मिथ्या अन्धकार नष्ट हो

गया है। मैंने अपने वास्तविक (परात्म) स्वरूप को पहचान लिया है, जिससे संसार का उलटा चक्र भी समाप्त हो गया है।

भावार्थ– जन्म–मरण, सुख–दुख ही संसार के उलटे चक्र हैं, जिनमें जीव फँसा रहता है। इनसे आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि वह मात्र द्रष्टा है।

वाले ओलखीने आप मोसूं, कीधूं ते सगपण सत।
सनकूल द्रष्टे हूं समझी, आ जाण्यूं जोपे असत।।५०।।

प्रियतम ने इस भवसागर में मेरी पहचान की और मुझे अपनाकर अपने अखण्ड (मूल) सम्बन्ध को सार्थक किया। उनकी प्रेम–भरी दृष्टि से मैंने उनके प्रति अपने सम्बन्ध को सत्य समझा तथा संसार को मिथ्या माना।

सनंध सर्वे कही करी, ओलखाव्या एधाण।

हवे प्रगट थई हूं पाधरी, मारी सगाई प्रमाण।।५१।।

प्रियतम ने मुझे अपनी तथा माया की सारी वास्तविकता बताकर परमधाम के पच्चीस पक्षों की पहचान करायी। अब मैं परमधाम के अपने मूल सम्बन्ध के कारण "इन्द्रावती" के रूप में प्रत्यक्ष रूप से उजागर हो गयी हूँ।

हवे साथ मारो खोली काढ़ूं, जे भली गयो रामत मांहें।

प्रकास पूरण अमकने, हवे छपी न सके क्यांहें।।५२।।

अब जो भी मेरे सुन्दरसाथ माया में भटक गये हैं, उन्हें मैं खोज निकालूँगी। अब मेरे पास धाम धनी का दिया हुआ तारतम ज्ञान का प्रकाश है, जो किसी भी प्रकार से छिपा नहीं रह सकता।

ओलखी साथ भेलो करूं, द्रढ करी दऊं मन।

रामत देखाडी जगवुं, कही ते प्रगट वचन।।५३।।

मैं तारतम ज्ञान से सुन्दरसाथ की पहचान करके उन्हें एकत्रित करूँगी तथा उनके मन में प्रियतम और परमधाम के प्रति दृढ़ता भर दूँगी। प्रियतम द्वारा कही गयी तारतम वाणी के वचनों को उन्हें सुनाऊँगी तथा जागनी का खेल दिखाते हुए जाग्रत करूँगी।

प्रकरण ।।१।। चौपाई ।।५३।।

रामत देखाडी छे

इस प्रकरण में मायावी खेल की एक झलक दिखायी गयी है।

आ रामतना तमने, प्रगट कहूं प्रकार।
आ भोमना बंध छोडी दऊं, जेम जुओ जोपे करार।।१।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे साथ जी! मैं आपसे इस मायावी खेल की वास्तविकता को स्पष्ट रूप से बता रही हूँ। मैं आपको इस संसार के बन्धनों से छुड़ाना चाहती हूँ, जिससे आप इस जागनी लीला को देखकर अपने हृदय में शान्ति प्राप्त कर सकें।

ए सुपनतणी जे रामत, रची ते अति अख्यात।
मूलबुध बिसरी गई, जाणे सुपन नहीं साख्यात।।२।।

यह स्वप्न का खेल है, जिसकी रचना बहुत ही विचित्र हैं। इसमें हम अपने मूल (जाग्रत बुद्धि एवं निज बुद्धि) को भूल गये हैं, जिससे ऐसा लगता है कि यह सब सपना नहीं बल्कि साक्षात् है।

पूरूं मनोरथ तमतणां, उघाडूं रामतना बार।
रामत देखाडी करी, करूं सत ना विस्तार।।३।।

इस ब्रह्माण्ड से परे जाने का मार्ग दिखाकर (द्वार खोलकर) मैं आपकी आत्मिक इच्छाओं को पूर्ण करूँगी। इस मायावी संसार का खेल दिखाकर जागनी लीला में परमधाम के अखण्ड ज्ञान का विस्तार करूँगी।

अर्ध साथ रह्यो अटकी, जेणे जोयानो हरख अपार।
स्वांग देखाडी विध विधना, पछे दऊं ते सतनो सार।।४।।

व्रज–रास के पश्चात् अपने आधे सुन्दरसाथ (तामसी सखियों) के मन में माया का खेल देखने की बहुत इच्छा थी, जिसके कारण यह खेल पुनः बनाना पड़ा है। उन सुन्दरसाथ की सुरता अभी खेल में फँसी पड़ी है। उन्हें तरह–तरह के खेल दिखाने के पश्चात् अखण्ड ज्ञान का प्रकाश दूँगी।

वात सुणो मारा वालैया, साथे दीठां ते दुख संसार।
केम थाय साथ मांहूं मारो, जिहां ऊभी इंद्रावती नार।।५।।

मेरे प्रियतम! मेरी बात सुनिये। सुन्दरसाथ ने इस संसार में बहुत अधिक दुःख देखा है। जहाँ आपकी अर्धांगिनी इन्द्रावती हो, वहीं पर मेरा सुन्दरसाथ यदि माया में दुःखी हो, तो क्या ऐसा शोभा देता है?

तमे वांकी ते वाटे चलविया, विसमां ते केम चलाय।

हूं ग्रही दऊं धाम धणी, तो सुख मूने थाय।।६।।

मेरे धाम धनी! आपने इन्हें कर्मकाण्ड के टेढ़े (गादी पूजा) मार्ग पर चलाया। भला ऐसे कठिन मार्ग पर इनसे कैसे चला जा सकता है? यदि मैं इन्हें आपके चरणों में ला देती हूँ, तो मुझे बहुत सुख होगा।

हवे जागी जुओ मारा साथजी, रामत छे ब्रह्मांड।

जोपे जुओ नेहेचितसूं, मध्य भरथजीने खंड।।७।।

मेरे प्रिय सुन्दरसाथ जी! अब आप जाग्रत होकर इस मायावी ब्रह्माण्ड के खेल को देखिये। इस भरतखण्ड में आप धनी की छत्रछाया में रहते हुए चिन्ता मुक्त होइए और द्रष्टा भाव से अच्छी तरह से खेल को देखिए।

जिहां वाविए वृख उपजे, जेनों फल वांछे सहु कोय।

बीज जेवुं फल तेवुं, करत कमाई जोय।।८।।

यह भरतखण्ड वह कर्म भूमि है, जहाँ बीज बोने पर वह वृक्ष के रूप में दृष्टिगोचर होता है, जिसके फल की इच्छा सभी करते हैं। जैसा बीज बोया जाता है, वैसा ही फल प्राप्त होता है। इस प्रकार कर्म के अनुसार ही फल प्राप्त होता है।

भावार्थ– मनुष्य को शुभ–अशुभ कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है। उपरोक्त चौपाई में बीज वह वासना है, जिसके अनुसार जीव कर्म की ओर उन्मुख होता है। अपने संस्कारों के अनुसार वृक्ष रूपी शुभ या अशुभ कर्म दिखायी देता है, जिसका परिणाम फल (कर्मफल–भोग) के रूप में प्राप्त होता है।

भोम भली भरथ खंडनी, जिहां निपजे निध निरमल।
बीजी सर्वे भोम खारी, खारा ते जल मोहजल।।९।।

भारतवर्ष वह दिव्य भूमि है, जहाँ तारतम ज्ञान के रूप में परमधाम की अखण्ड निधि आयी है। भरतखण्ड के अतिरिक्त अन्य सभी भागों की धरती अध्यात्म से रहित (नमकीन) है। उन सभी देशों में मोहसागर का मायावी जल क्रीड़ा करता है, जिसमें केवल भौतिकवाद (खारापन) ही प्रधान होता है।

ऐ मधे जे पुरी कहावे, नौतन जेहेनूं नाम।
उत्तम चौद भवनमां, जिहां वालानो विश्राम।।१०।।

इस भरतखण्ड के अन्दर नवतनपुरी नामक एक नगरी है, जो चौदह लोकों में सबसे श्रेष्ठ है, क्योंकि इसी पुरी में हमारे प्रियतम ने श्री देवचन्द्र जी के अन्दर अपने आवेश

स्वरूप से विराजमान होकर लीला की थी।

रामत घणूं रलियामणी, तमे मांगी मन करी खंत।
विध सर्वे कहूं विगते, जोपे जुओ नेहेचित।।११।।

यह खेल बहुत सुन्दर है। आपने इसे अपने प्रियतम से अपने मन की इच्छा होने पर माँगा था। मैं इसकी सारी वास्तविकता को आपसे कहती हूँ। आप निश्चित होकर इसे अच्छी प्रकार से देखिये।

रामत जोइए जी, जोवा आव्या छो जेह।
मांगी आपणे धणी कने, आ देखाडे छे तेह।।१२।।

हे साथ जी! आप इस खेल को देखिए, जिसके लिये आप यहाँ आये हुए हैं। आपने अपने धनी से इस माया का खेल माँगा था। उसे ही प्रियतम आपको दिखा रहे हैं।

मोहोरा ते दीसे सहु जुजवा, अने जुजवी मुखवाण।
स्वांग काछे सहु जुजवा, जाणे दीसंतां प्रमाण।।१३।।

संसार में सभी मत–पन्थ अलग–अलग दिखायी दे रहे हैं। उनका ज्ञान भी अलग–अलग है। सभी अलग–अलग रीति–रिवाजों के पालन का अभिनय करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे एकमात्र ये ही सच्चे हैं।

विध विधना वेख ल्यावे, जाणे रामत निरवाण।
ब्राह्मण खत्री वैस्य सुद्र, मली ते राणों राण।।१४।।

ये तरह–तरह की वेशभूषा धारण करते हैं। इन्हें लगता है कि जैसे इस प्रकार के खेल से ही मोक्ष प्राप्त होगा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र का मिश्रित रूप यह मानव समाज है। इनमें बड़े–बड़े राजा भी सम्मिलित हैं।

मांहोंमांहें सगा समधी, मांहें कुटंबनो वेहेवार।

हंसे हरखे रूए सोके, चौद विद्या वर्ण चार।।१५।।

चारों वर्णों के ये लोग १४ विद्याओं का अध्ययन करते हैं। ये अपने सगे-सम्बन्धियों तथा पारिवारिक सदस्यों के साथ व्यवहार में कभी तो प्रसन्नतापूर्वक हँसते हैं और कभी शोक के कारण रोते हैं।

अठारे वर्ण एणी विधे, लोभे लागा करे उपाय।

विना अगनी पर जले, अंग काम क्रोध न माय।।१६।।

इस प्रकार १८ वर्णों के लोग लोभ में फँसकर तरह-तरह के कार्यों में लिप्त रहते हैं। इनके हृदय में इतना अधिक काम-क्रोध भरा होता है कि बिना अग्नि के ही उनके श्रद्धा एवं विश्वास के पँख जलते रहते हैं।

अनेक सेहेर बाजार चौटा, चोक चोवटा अनेक।

अनेक कसवी कसव करतां, हाट पीठ विसेक।।१७।।

इस संसार में अनेक नगर बसे हुए हैं, जिनमें चारों ओर दुकानों के सजे हुए बहुत से बाजार जगमगाते रहते हैं। इन नगरों में ऐसे भी स्थान होते हैं, जहाँ से चारों दिशाओं में मार्ग जाते हैं और वहाँ पर चौकोर चबूतरे बने होते हैं। इनमें बहुत से कारीगर अपनी शिल्प कला का व्यवसाय करते हैं। यहाँ छोटे-छोटे बाजार एवं सुन्दर-सुन्दर शिक्षा केन्द्र भी होते हैं।

स्वांग सर्वे सोभावीने, करे हो हो कार।

कोई मांहें आहार खाधां, कोई खाधा अहंकार।।१८।।

सभी मत-पन्थों के अनुयायी तरह-तरह की वेशभूषा धारण करते हैं तथा अपने आध्यात्मिक ज्ञान की श्रेष्ठता

का डँका पीटते हैं (कोलाहल करते हैं)। इनमें कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो अपनी उच्च स्तर की साधना को दर्शाने के लिये अति अल्पाहार करते हैं, तो कुछ लोग अहंकार को जीतने के नाम पर अत्याधिक विनम्र होने का दिखावा करते हैं।

कोई मांहें वेहेवारिया, कोई राणा राय।
कोई मांहें रांक रोवंतां, ए रामत एम रमाय।।१९।।

संसार में कोई व्यवहार-कुशल है, तो कोई राणा और राजा भी है। कोई बहुत दुःखी एवं गरीब भी है, जो रोते हुए निष्प्रयोजन घूमता रहता है।

कोई पौढे पलंग कनक ने, कोई ऊपर ढोले वाय।
वातो करतां जी जी करे, ए रामत एम सोभाय।।२०।।

कोई सोने के पलंग पर सोता है, तो कोई उसके ऊपर पँखे से हवा झलता है, तथा उससे बातें करते समय उसकी प्रशंसा में अनावश्यक रूप से "हाँ जी, हाँ जी" करता रहता है। इस प्रकार इस खेल की शोभा (विचित्रता) है।

कोई बेसे पालखी, कोई उपाडी उजाय।
कोई करे छत्र छाया, रामत एमज थाय।।२१।।

यह खेल इस प्रकार चल रहा है कि कोई पालकी में बैठा होता है, तो कुछ लोग उसे उठाकर ले चलते हैं। कोई किसी के चलने पर छाया करने के लिये उसके शिर के ऊपर छत्र उठाये चला करता है।

मांहोंमांहें सनमंध करतां, उछरंग अंग न माय।

अबीर गुलाल उडाडतां, सेहेरों मां फेरा खाय।।२२।।

आपस में होने वाले वैवाहिक कार्यों में लोगों के मन में इतनी प्रसन्नता भरी होती है कि वे एक-दूसरे के ऊपर अबीर-गुलाल उड़ेलते हैं तथा नगर में परिक्रमा लगाते (घूमते) हैं।

आभ्रण पेहेरी अस्व चढे, कोई करे छाया छत्र।

कोई नाटारंभ करे, कोई बजाडे वाजंत्र।।२३।।

कोई (वर) आभूषण पहनकर घोड़े पर सवार होकर चलता है, तो कोई उसके ऊपर छाया करने के लिये छत्र लेकर चलता है। कोई उसके आगे-आगे नाट्य कला एवं नृत्य करते हुए चलता है, तो कोई वाद्य-यन्त्रों को बजाते हुए चलता है।

कोई सीढी बांधी आवे सामा, करे ते पोक पुकार।
विरह वेदना अंग न माय, पीटे मांहें बाजार।।२४।।

दूसरा दृश्य इसके पूर्णतया विपरीत होता है, जिसमें सामने से लोग किसी मरे हुए व्यक्ति की अर्थी को लेकर आ रहे होते हैं। वे अत्यन्त दुःख भरे स्वरों में रो रहे होते हैं। उनके हृदय में मृतक के वियोग से अपार दुःख भरा होता है और वे नगर की सड़कों पर छाती पीट-पीटकर अपना दुःख व्यक्त कर रहे होते हैं।

देहेन हाथे दिए पोते, रूदन करे जलधार।
सगा सनमंधी सहु मली, टलवले नर नार।।२५।।

मरे हुए व्यक्ति को उसके सगे-सम्बन्धी अपने ही हाथों से अग्नि में जला देते हैं और रो-रोकर आँसुओं की धारा बहाते हैं। इस प्रकार, सगे-सम्बन्धी सभी स्त्री-पुरुष

मिलकर उस मरे हुए व्यक्ति के लिये शोक करते हैं।

कोई मांहें जनम पामे, कोई पामे मरन।

कोई मांहें हरख सों, कोई सोक रूदन।।२६।।

इस संसार में किसी का जन्म होता है, तो कोई मरता है। कोई बहुत अधिक प्रसन्न होता है, तो कोई दुःख के कारण रोता है।

खरचे खाए अहंमेवे, मांहें मोटा थाय।

दान करी कीरत कहावे, ए रामत एम रमाय।।२७।।

कुछ व्यक्ति इस प्रकार अहंकार के वशीभूत हो जाते हैं कि समाज में स्वयं को बड़ा सिद्ध करने के लिये विवाह आदि सामाजिक कार्यों में बहुत अधिक धन खर्च करते हैं। ये लोग दान करके अपनी महिमा बढ़ाते हैं। संसार का

खेल इस प्रकार चल रहा है।

कोई किरपी कोई दाता, कोई जाचक केहेवाए।

कोईना अवगुण बोले, कोईना गुण गाए।।२८।।

इस संसार में कोई कृपण है, तो कोई दानी है, और कोई भिक्षुक है। किसी के दोष बताये जाते हैं, तो किसी के गुणों की महिमा गायी जाती है।

कोई चढी चकडोल बेसे, तुरी गज पाएदल।

विध विधना बाजंत्र बाजे, जाणे राज नेहेचल।।२९।।

कोई बहुत बड़े रथ पर बैठता है। उसके साथ हाथियों और घोड़ों पर सवार एवं कुछ पैदल सैनिक चला करते हैं। तरह-तरह के बाजे बज रहे होते हैं। ये ऐसा मानते हैं कि इनका राज्य सदा ही रहने वाला है।

साम सामी थाय सेन्या, भारथ करे लोह अंग।

अहंकारे आकार पछाडे, नमे नहीं अभंग।।३०।।

आमने–सामने सेनायें खड़ी हो जाती हैं। सैनिक लोहे के कवच पहनकर युद्ध करते हैं। युद्ध में उनका शरीर घायल होकर गिर जाता है, किन्तु अहंकार से भरे होने के कारण वे अपना सिर नहीं झुकाते हैं।

कोई जीते कोई हारे, हरख सोक न माय।

दिसा सर्वे जीती आवे, ते प्रथीपत केहेवाय।।३१।।

इनमें जो विजय प्राप्त करता है, वह बहुत अधिक प्रसन्न होता है, और जो हार जाता है, उसके दुःख की सीमा ही नहीं रहती। जो सभी दिशाओं में विजय प्राप्त कर लेता है, उसे दिग्विजयी पृथ्वीपति कहते हैं।

कोई भरया लई भाकसी, उथमे बंध बंधाय।

मार माथे पडे मोहोकम, रामत एणी अदाय।।३२।।

किसी को कारागार में बन्द किया जाता है। उसे उल्टे बाँधकर लटकाया जाता है तथा उसके सिर पर भयंकर मार पड़ती है। माया का यह खेल इस प्रकार चल रहा है।

जीत्या हरखे पौरसे, सूरातन अंग न माए।

हारया तिहां सोक पामे, करे मुख त्राहे त्राहे।।३३।।

जो अपनी वीरता से विजय प्राप्त करते हैं, वे हर्षित होते हैं। उनके हृदय में अपने शौर्य (वीरता) का अपार उत्साह बना रहता है। जो हार जाते हैं, वे दुःखी होते हैं। वे अपने मुख से "मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो" की रट्ट लगाते हैं।

कोई मांहें रोगिया, अने कोई मांहें अंध।

कोई लूला कोई पांगला, रामत एह सनंध।।३४।।

माया का यह विचित्र खेल ऐसा है, जिसमें कोई रोगी है और कोई अन्धा है। कोई लूला है और कोई लंगड़ा है।

कोई मांहें फकीर फरतां, उदम नहीं उपाय।

उदर कारण कष्ट पामे, भीखे पेट न भराय।।३५।।

संसार में कोई तो फकीर बनकर घूमता रहता है। कोई जब अपने व्यवसाय का उपाय नहीं कर पाता, तो वह भूख के कारण दुःखी होता है। भीख माँगने से भी उसका पेट नहीं भरता।

प्रकरण ।।२।। चौपाई ।।८८।।

रामतमां वली रामत

(खेल में खेल)

ए रामत मांहें जे रामतो, तेनो न लाभे पार।

ए बेखों मांहें वली बेख सोभे, स्वांग सहु संसार।।१।।

इस माया के खेल में जो तरह-तरह के खेल खेले जा रहे हैं, उनकी कोई सीमा ही नहीं है। सारा संसार एक नाटक की तरह है, जिसमें अभिनय करने वालों ने तरह-तरह की अनेक वेशभूषाएँ धारण कर रखी हैं।

कोई वेख जो साध कहावे, कोई चतुर सुजाण।

कोई वेख जो दुष्ट कहावे, कोई मूरख अजाण।।२।।

कोई साधु की वेशभूषा में है, तो कोई चतुर ज्ञानी

कहला रहा है। कोई अपनी वेशभूषा से दुष्ट कहलाता है, तो कोई मूर्ख और अज्ञानी कहलाता है।

अनेक पगथी परव परवा, दया दान देवाय।
देखाडूं सहु करी सागर, मांहेंना मांहें समाय।।३।।

अनेक लोग मार्ग, प्याऊ, एवं धर्मशाला के निर्माण में दया भाव से बहुत अधिक दान देते हैं। इस प्रकार, वे संसार सागर में अपनी साहूकारी (सेठपना) दिखाकर आन्तरिक रूप से (मन ही मन) प्रसन्न होते हैं।

अनेक देहरा अपासरा, मांहें मुनारा मसीत।
तलाब कुआ कुंड वावरी, मांहें विसामां कई रीत।।४।।

ये लोग पौराणिक मन्दिरों, जैन मन्दिरों, मीनारों से युक्त मस्जिदों, तालाबों, कुओं, जल के कुण्डों-बावड़ियों,

तथा अनेक प्रकार की धर्मशालाओं का निर्माण कराते हैं।

कई जुगते जगन करतां, कई जुगते उपचार।
कई जुगते धरम पालें, पण हिरदे घोर अंधार।।५।।

कुछ लोग युक्तिपूर्वक यज्ञ करते हैं, तो कुछ लोग औषधियों द्वारा दूसरों का उपचार करते हैं। कई लोग उचित रूप से धर्म पालन का भी अभ्यास करते हैं, किन्तु उनके हृदय में भी अज्ञानता का घोर अन्धकार भरा ही रहता है।

कई जुगते सिध साधक, कई जुगते सन्यास।
कई जुगते देह दमे, पण छूटे नहीं जमफांस।।६।।

कई लोग नियमपूर्वक सिद्ध या साधक की भूमिका में होते हैं, तो कुछ लोग सन्यास धर्म का निर्वाह करते हैं।

कई लोग समाधि की प्राप्ति के लिये युक्तिपूर्वक शरीर को हठयोग की कठिन साधनाओं से गुजारते हैं, फिर भी वे मृत्यु के बन्धन से छूट नहीं पाते हैं।

कई जुगते वैराग वरते, कई जोग पाले सिध।
मठवाले पिंड पाले, पण नहीं परम नी निध।।७।।

कई नियमपूर्वक वैराग्य का पालन करते हैं, तो कोई सिद्धावस्था की प्राप्ति के लिये योग साधना करते हैं। मठों में रहने वाले सुविधापूर्ण जीवन से अपने शरीर को पुष्ट करते हैं, किन्तु इनके पास ब्रह्मज्ञान की निधि नहीं होती।

आपने नव ओलखे, नव ओलखे परमेस्वर।
तो पार ते केम पामे, जिहां सुध न पोते घर।।८।।

ज्ञान और वैराग्य की राह पर चलने वाले ये लोग, न तो

अपने स्वरूप की पहचान करते हैं और न परमात्मा की। जिन्हें अपने मूल घर की ही पहचान नहीं है, वे इस मोह सागर से परे कैसे जा सकते हैं।

खटचक्र नाडी पवन, साधे अजपा अनहद।
कई त्रवेनी त्रकुटी, जोती सोहं राते सब्द।।९।।

कुछ लोग प्राणायाम द्वारा छः चक्रों (मूलाधार, स्वााधिष्ठान, विशुद्ध, अनाहत, आज्ञा, एवं सहस्त्रार) तथा नाड़ियों के शोधन की साधना करते हैं। कई ओऽम् एवं अनहद ध्वनि (ताल, मृदंग, झांझ, डम्फ, किंकिण, सिंह, गर्जन, मुरली, शहनाई, वीणा, तथा बादलों की गर्जना) को ही सुनने की साधना करते हैं। कई लोग इड़ा, पिंगला, और सुष्मना के मिलन स्थान त्रिवेणी तथा दोनों भौंहों के मध्य स्थान त्रिकुटी में संयम (धारणा,

ध्यान, और समाधि लगाने) की साधना करते हैं। इस प्रकार, इन साधनाओं में वे तरह–तरह की ज्योतियों, तरह–तरह के शब्दों, एवं "सोऽहम्" (मैं वही ब्रह्म हूँ) का अनुभव करते हैं।

कोई खट दरसनी कहावे, धरे ते जुजवा वेख।
पारब्रह्मने पामे नहीं, रूदे अंधेरी वसेख।।१०।।

कुछ लोग छः दर्शनों के पारंगत विद्वान कहलाते हैं और सबसे अलग ही प्रकार की वेशभूषा धारण करते हैं। इन्हें परब्रह्म की यथार्थ पहचान नहीं होती और इनके हृदय में शुष्क ज्ञान के अभियान के कारण माया का अन्धकार फैला रहता है।

श्रीपात पंडित ब्रह्मचारी, भट वेदिया वेदांत।
पुराण जोई जोई सर्वे पडिया, परमहंस सिधांत।।११।।

कई लोग पूज्यपाद, पण्डित, ब्रह्मचारी, तथा वेद-वेदान्त के विद्वान ब्राह्मण कहलाते हैं। कई तो सभी पुराणों से परमहंसों के सिद्धान्त खोजने में ही लगे रहते हैं।

अलप अहारी निद्रा निवारी, सब्द सत विचारी।
आचारीने नेम धारी, पण मूके नहीं अंधारी।।१२।।

कुछ लोग अपनी कठोर साधना के नाम पर अल्प आहार करने वाले, निद्रा पर विजय प्राप्त करने वाले, तथा ब्रह्मज्ञान के कथनों पर विचार करने वाले होते हैं। कुछ लोग आचरण की शुद्धता तथा कर्मकाण्ड के नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन करने वाले होते हैं, किन्तु ये भी

माया के अन्धकार को छोड़ नहीं पाते हैं।

संत महंत अनेक मुनिवर, देखीतां दिगंबर।
जाए सहुए प्रघल पूरे, कापडी कलंदर।।१३।।

संसार में बहुत से सन्त, महन्त, मुनि, और सर्वथा नग्न रहने वाले महात्मा दिखायी पड़ते हैं। कुछ मुस्लिम फकीर ऐसे होते हैं, जो संसार से विरक्त रहते हैं और काले कपड़े (कापड़ी) पहनते हैं। किन्तु माया के छल रूपी जल के बहाव में सभी बहते हुए ही दिखायी देते हैं।

सीलवंती सती कहावे, आरजा अरधांग।
जती वरती पोसांगरी, ए अति सोभावे स्वांग।।१४।।

कई स्त्रियाँ सती-शीलवन्ती कहलाती हैं, तो कोई आर्या-अर्धांगिनी। इसी प्रकार, पुरुषों में कुछ यति हैं, तो

कुछ व्रतों का पालन करने वाले व्रती हैं, और कुछ कठोर तप करने वाले जैन महात्मा हैं। ये अपने आचरण तथा तप से बहुत अधिक प्रसिद्ध होते हैं।

मलक मुल्ला मलंग जिंदा, बांग दे मन धीर।

पाक थई थई सहुए पड़िया, मीर पीर फकीर।।१५।।

कुछ लोग जीते जी सांसारिक सुखों का परित्याग कर देने वाले "मलंग" हैं, तो कुछ "मुल्ला" के रूप में मस्जिद में नमाज की अजान देकर अपने मन को शान्त करने का प्रयास करते हैं। कुछ ऐसे भी हैं, जो मीर, पीर, या फकीर कहलाकर पवित्र बनने का दावा करते हैं।

कई करामात कोटल, औलिया आलम।

बोदला बेकैद सोफी, जाणी करे जुलम।।१६।।

कई कुटिलतापूर्वक चमत्कार दिखाने वाले हैं। कई इबादत में मग्न रहने वाले औलिया हैं, तो कई कुरान–हदीसों का ज्ञान रखने वाले आलिम या बोदरे हैं। शरीयत छोड़कर तरीकत की राह पर चलने वाले कई बेकैदी हैं, तो खुदा से दोस्ती का दावा करने वाले कई सोफी भी हैं। किन्तु ये स्वयं को माया में आसक्त कर अपने आत्मिक स्वरूप पर बहुत अधिक अत्याचार करते हैं।

अनेक मांहें धर्म पाले, पंथ प्रगट थाय।
आंधला जेम संग चाले, ए पाखंड एम रचाय।।१७।।

अनेक लोग धर्माचरण की ओट में नये–नये पन्थ (सम्प्रदाय) प्रकट कर लेते हैं। जिस प्रकार, अन्धा व्यक्ति अपने साथ किसी को लेकर चलता है, उसी प्रकार संसार के लोग भी धर्म की ओट में पाखण्ड को ही

अपना साथी बनाते हैं।

रमें मांहोंमांहें रब्दे, करे परसपर क्रोध।

मछ गलागल मांहें सघले, मूके नहीं कोई व्रोध।।१८।।

ये सभी तथाकथित लोग आपस में विभिन्न विषयों पर क्रोधपूर्वक लड़ते रहते हैं। जिस प्रकार नदी में मछलियाँ एक-दूसरे की वैरी होती हैं, उसी प्रकार इनमें से भी कोई दूसरों से विरोध नहीं छोड़ना चाहता।

प्रकरण ।।३।। चौपाई ।।१०६।।

पंथ पैंडानी खेंचाखेंच

पंथ पैडों की खेंचा खेंच

(सैद्धान्तिक विषयों पर विवाद)

इस प्रकरण में यह दर्शाया गया है कि तारतम ज्ञान के अभाव में संसार के सभी मतानुयायी किस प्रकार सैद्धान्तिक वाद-विवाद में फँसे रहते हैं।

कोई कहे दान मोटो, कोई कहे गिनान।
कोई कहे विग्नान मोटो, एम वदे सहु उनमान।।१।।

किसी का कहना है कि दान बड़ा है, तो कोई कहता है कि ज्ञान बड़ा है। कोई विज्ञान अर्थात् सर्वोच्च (निरपेक्ष) सत्य को सबसे बड़ा कहता है। इस प्रकार, सभी अनुमान से लड़ते हैं।

कोई कहे करम मोटो, कोई कहे मोटो काल।

कोई कहे ए अगम, एम रमे सहु पंपाल।।२।।

कोई कहता है कि कर्म ही सबसे बड़ा है, तो कोई काल को बड़ा कहता है। किसी का कथन है कि अगम कहा जाने वाला निराकार सबसे बड़ा है। इस प्रकार, सभी लोग मिथ्या वाद–विवाद में फँसे रहते हैं।

कोई कहे तीरथ मोटो, कोई कहे मोटो तप।

कोई कहे सील मोटो, कोई कहे मोटो सत।।३।।

कोई तीर्थ यात्रा करने को श्रेष्ठ मानता है, तो कोई तप करने को। किसी के मतानुसार शील (माधुर्य भाव से धर्माचरण) बड़ा है, तो किसी के अनुसार सत्य बड़ा है।

कोई कहे विचार मोटो, कोई कहे मोटो व्रत।

कोई कहे मत मोटी, एम वदें कई जुगत।।४।।

कोई विचार को बड़ा मानता है, तो कोई व्रत को। कोई बुद्धि को ही सर्वोपरि मानता है। इस प्रकार, ज्ञानीजन अनेक प्रकार से वक्तव्य दिया करते हैं।

कोई कहे करनी मोटी, कोई कहे मुगत।

कोई कहे भाव मोटो, कोई कहे भगत।।५।।

किसी के कथनानुसार करनी अर्थात् आचरण बड़ा है, तो किसी के अनुसार मुक्ति बड़ी है। कोई भाव को बड़ा कहता है, तो कोई भक्ति को।

कोई कहे कीर्तन मोटो, कोई कहे श्रवन।

कोई कहे वंदनी मोटी, कोई कहे अरचन।।६।।

कोई कीर्तन को बड़ा मानता है, तो कोई श्रवण को। कोई वन्दना को श्रेष्ठ मानता है, तो कोई अर्चना (पूजा) को।

कोई कहे ध्यान मोटो, कोई कहे धारण।

कोई कहे सेवा मोटी, कोई कहे अरपन।।७।।

कोई कहता है कि ध्यान बड़ा है, तो कोई कहता है कि धारणा। कोई सेवा को बड़ा कहता है, तो कोई स्वयं को अर्पित कर देने (समर्पण) को श्रेष्ठ मानता है।

कोई कहे स्वांत मोटी, कोई कहे मोटो पण।

रमे सहुए निद्रा मांहें, रूदे अंधारू अति घण।।८।।

कोई शान्ति को बड़ा कहता है, तो कोई प्रतिज्ञा को। इस प्रकार, संसार के सभी लोग माया की गहरी निद्रा में सो रहे हैं। उनके हृदय में अज्ञानता का घना अन्धकार छाया हुआ है।

कोई कहावे अप्रस अंगे, कोई निवेदन।

कोई कहे अमे नेम धारी, पण मूके नहीं मैल मन।।९।।

कोई अपने शारीरिक अंगों को ही पवित्र रखने में श्रेष्ठता मानते हैं, तो कोई निवेदन करने को। किसी का कहना है कि हम धर्म के नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन करने वाले हैं। इतना होने पर भी इनके मन का मैल नहीं जाता।

कोई कहे सत संगत मोटी, कोई कहे मोटो दास।
कोई कहे विवेक मोटो, कोई कहे विस्वास।।१०।।

कोई कहता है कि सत्संगति बड़ी है, तो कोई दास भावना को बड़ा कहता है। किसी के मत में विवेक बड़ा है, तो कोई विश्वास को ही श्रेष्ठ मानता है।

कोई कहे सदा सिव मोटो, कोई कहे आद नारायण।
कोई कहे आद सक्त मोटी, एम करे ताणोंताण।।११।।

कोई सदाशिव को बड़ा कहता है, तो कोई आदिनारायण को। कोई आदि शक्ति को ही सर्वोपरि मानता है। इस प्रकार, सभी आपस में खींचतान (विवाद) करते हैं।

कोई कहे आतम मोटी, कोई कहे परआतम।
कोई कहे अहंकार मोटो, जे आदनों उतपन।।१२।।

कोई आत्मा को श्रेष्ठ कहता है, तो कोई परात्म को। किसी के मत में अहंकार ही सबसे बड़ा है, क्योंकि यह सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न हुआ है।

कोई कहे सकल व्यापी, दीसंतो सहु ब्रह्म।।
कोई कहे ए निरगुण न्यारो, आ दीसे छे सहु भरम।।१३।।

कोई कहता है कि ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है, सम्पूर्ण जगत में ब्रह्म ही ब्रह्म दिख रहा है। किसी का कथन है कि वह निर्गुण है तथा इस जगत से परे है, यह सम्पूर्ण जगत भ्रम मात्र (अज्ञान रूप) है।

कोई कहे सुंन मोटी, कोई कहे निरंजन।
सार अर्थ सूझे नहीं, पछे वादे वढें वचन।।१४।।

किसी का कहना है कि शून्य बड़ा है, तो कोई निरञ्जन को बड़ा कहता है। इनमें से किसी को भी वास्तविक सत्य का बोध नहीं है और अपने-अपने सिद्धान्तों के वचनों को लेकर आपस में लड़ते रहते हैं।

कोई कहे आकार मोटो, कोई कहे निराकार।
कोई कहे मांहें जोत मोटी, एम वढें भरया विकार।।१५।।

कोई कहता है कि आकार बड़ा है, तो कोई निराकार को बड़ा कहता है। कोई प्रणव ज्योति को सर्वोपरि मानता है। इस प्रकार, संशय रूपी विकार से ग्रस्त होकर ये आपस में लड़ते रहते हैं।

कोई कहे पारब्रह्म मोटो, कोई कहे परसोतम।

वेदने वाद अंधकारे, वादे बढता धरम।।१६।।

किसी का कहना है कि परब्रह्म बड़ा है, तो कोई कहता है कि उत्तम पुरुष (पुरुषोत्तम) बड़ा है। वेद को अपना आधार मानकर अपनी पौराणिक कल्पनाओं से अपने-अपने मत को चलाने वाले ये लोग, अज्ञानता के अन्धकार में भटकते रहते हैं तथा वाद-विवाद में ही अपने धर्म की वृद्धि समझते हैं।

प्रगट पंपाल दीसे रमता, अति घणो अंधेर।

कहे अमे साचा तमे झूठा, एम फरे ते अवले फेर।।१७।।

इस संसार में अज्ञानता का विशाल साम्राज्य फैला हुआ है, जिसमें सर्वत्र झूठ ही झूठ प्रत्यक्ष रूप से क्रीड़ा करते हुए दिखायी दे रहा है। सभी मात्र स्वयं को ही सत्य

कहते हैं तथा दूसरों को मिथ्या कहते हैं। इस प्रकार, सभी उलटे मार्ग (चक्र) में भटक रहे हैं।

पंथ सहुना एहज पैया, जे वलग्या मांहें वैराट।
ए विध कही सहु विगते, ए रच्यो माया ठाट।।१८।।

सभी पन्थों (मतों) का यही मार्ग है, जिसमें वे १४ लोक वाले इस क्षर पुरुष में ही अटके पड़े हैं। मैं पहले ही इन सबकी वास्तविकता बता चुकी हूँ। जगत का यह प्रपञ्चपूर्ण ऐश्वर्य माया द्वारा ही रचा गया है।

परपंचे सहु पंथ चाले, कहे लेसूं चरण निवास।
ए रामतना जे जीव पोते, ते केम पामे साख्यात।।१९।।

संसार के सभी पन्थ अज्ञानता के अन्धकार में ही चल रहे हैं, फिर भी उनका दावा रहता है कि वे परब्रह्म के

चरणों में ही निवास करेंगे। इस मायावी जगत के जो स्वाप्निक जीव हैं, वे (तारतम ज्ञान के अभाव में) साक्षात परब्रह्म को कैसे प्राप्त कर सकते हैं?

कोई भैरव कोई अगिन, कोई करवत ले।
पारब्रह्म ने पामे नहीं, जो तिल तिल कापे देह।।२०।।

भले ही कोई परब्रह्म के नाम पर पर्वत की चोटी से छलांग क्यों न लगा ले, स्वयं को अग्नि में जलाकर राख कर दे, अपने शरीर को आरे से चिरवा दे, तलवार से अपने शरीर को बहुत छोटे-छोटे टुकड़ों में काट डाले, फिर भी बिना तारतम ज्ञान के कोई भी सच्चिदानन्द परब्रह्म को प्राप्त नहीं कर सकता।

अनेक स्वांग रमे जुजवा, असत ने अप्रमाण।

मूल विना जे पिंड पोते, ते केम पामे निरवाण।।२१।।

संसार के सभी मत–पन्थों के अनुयायी मिथ्या एवं प्रमाण से रहित अनेक प्रकार के आडम्बरों में फँसे हुए हैं। भला, नश्वर तनों को धारण करने वाले ये स्वाप्निक जीव अखण्ड मुक्ति को कैसे प्राप्त कर सकते हैं?

प्रकरण ।।४।। चौपाई ।।१२७।।

वैराटनी जाली

ब्रह्माण्ड का प्रपञ्च

इस प्रकरण में यह दर्शाया गया है कि इस संसार में किस प्रकार अज्ञान रूपी कोहरा छाया हुआ है।

अनेक किव इहां उपजे, वैराट मुख वखाण।
वचन कही मांहें थाय मोटा, पण पामे नहीं निरवाण।।१।।

इस संसार में अध्यात्म से सम्बन्धित अनेक काव्यमय ग्रन्थों की रचना हुई है, जिनके रचनाकारों ने अपने ज्ञान को संसार में फैलाकर महान कहलाने की शोभा प्राप्त की, किन्तु वे शाश्वत मोक्ष नहीं पा सके।

बोले सहु बेसुधमां, कोई वचन काढे विसाल।
उतपन सर्वे मोहनी, ते थई जाय पंपाल।।२।।

इस संसार के सभी ज्ञानीजन नींद (बेसुधि) में ही अपने ज्ञान की बातें कहते हैं। इनमें किसी–किसी ने निराकार से परे अखण्ड बेहद की बातें भी कह दी हैं, किन्तु इन सभी जीवों की उत्पत्ति निराकार से हुई है, इसलिये अनुमान से कही हुई बातें भी निरर्थक हो जाती हैं।

वैराट कहे मारो फेर अवलो, मूल छे आकास।
डालों पसरी पातालमां, एम कहे वेद प्रकास।।३।।

वैदिक ग्रन्थों में यह बात दर्शायी गयी है कि ब्रह्माण्ड कहता है कि मेरी स्थिति उलटी है। मेरी जड़ें आकाश में हैं और डालियाँ पाताल तक फैली हुई हैं।

दोडे सहु कोई फलने, ऊंचा चढे आसमान।

आकास फल मले नहीं, कोई विचारे नहीं ए वाण।।४।।

सभी ज्ञानीजन संसार रूपी वृक्ष का फल प्राप्त करने के लिये आकाश में चढ़ने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु आकाश में उन्हें इसका फल प्राप्त नहीं होता। कोई वेदों के कथनों का विचार ही नहीं करता।

भावार्थ– उपरोक्त चौपाई में आलंकारिक रूप से यह बात कही गयी है कि अखण्ड मुक्ति रूपी फल को प्राप्त करने के लिये प्रकृति से परे होना पड़ेगा। वृक्ष की जड़ें धरती में होती हैं तथा डालियाँ आकाश में। इसी आधार पर सभी लोग संसार में ही परमात्मा को खोजने लगते हैं, जबकि संसार स्वयं मोह तत्व से उत्पन्न हुआ है। संसार रूपी वृक्ष का फल उलटी दिशा में अर्थात् प्रकृति (साकार–निराकार) से परे जाने पर प्राप्त होगा।

फल डाल अगोचर, आडी अंतराय पाताल।

वैराट वेद बंने कोहेडा, गूंथी ते रामत जाल।।५।।

इस संसार रूपी वृक्ष के न तो फल दिखायी देते हैं और न डालियाँ, क्योंकि इसके बीच में पाताल का आवरण आ जाता है। ब्रह्माण्ड और वेद के रहस्यों को जानना कोहरे में खोज करने के समान है। इनकी जटिलता ने ही इस मायावी खेल के बन्धनों को उत्पन्न किया है।

विध बंने दीसे जुगते, नाभ ने वली मुख।

गूंथी जालों बंने जुगते, माणी लीधां दुख सुख।।६।।

आदिनारायण की नाभि से प्रकट होने वाले ब्रह्माण्ड और मुख से प्रकट होने वाले वेद, दोनों की वास्तविकता एक जैसी है। इन दोनों ने मिलकर बहुत ही युक्तिपूर्वक अन्धकार की ऐसी जाली गूँथी है, जिसमें फँसकर जीव

कर्म–बन्धन में फँसा रहता है। इस अवस्था में सुख और दुःख को भोगना ही अपनी नियति (भाग्य) मान लेता है।

बंने कोहेडा बे भांतना, वैराट ने वली वेद।
ए जीव जालों जाली बांध्या, जाणे नहीं कोई भेद।।७।।

विराट और वेद दोनों ही दो प्रकार के कोहरे के समान हैं, जिनके बन्धन में जीव बन्धा होता है। इस प्रकार, माया के इस छलपूर्ण भेद को कोई भी समझ नहीं पाता।

कडी न लाधे केहेने, ए जालोनी जिनस।
त्रगुणने लाधे नहीं, तो सूं करे मूढ मनिस।।८।।

यह मायावी प्रपञ्च ऐसा है, जिसे पार करने (खोलने) की कला किसी ने भी नहीं पायी। जब ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव को भी नहीं मिली, तो भला मूर्ख बुद्धि वाले मनुष्य

कहाँ से प्राप्त कर सकते हैं।

देखाडवा तमने, कोहेडा कीधा एह।

उखेली फेर नाखूं अवलो, जेम छल न चाले तेह।।९।।

हे साथ जी! आपको दिखाने के लिये ही मैंने माया के इन दोनों कोहरों को बनाया है। मैं सबसे पहले इन्हें उखाड़कर फेंक देती हूँ, जिससे माया अपनी शक्ति न दिखा सके।

तांण अवला अतांग पूरा, आमलो अवलो एह।

आतम ने खोटी करे, साची ते देखे देह।।१०।।

यह मोहजल अथाह, गहरा, और उलटे प्रवाह वाला है। अन्तःकरण और इन्द्रियाँ भी उलटी दिशा में अर्थात् परब्रह्म से विमुख होकर चलने वाली हैं। संसार के लोग

माया के वशीभूत होकर अपनी आत्मा (चैतन्य स्वरूप) को झूठा समझने लगते हैं तथा शरीर को सत्य मानने लगते हैं।

करे सगाई देहसों, नहीं आतम नी ओलखांण।
सनमंध पाले देहसों, ए मोहजल अवलो तांण।।११।।

मोहजल के उलटे बहाव का ही यह फल है कि संसार के जीव विवाह आदि द्वारा केवल शरीर से ही अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं। उन्हें अपने या दूसरे के आत्मिक स्वरूप की कोई भी पहचान नहीं होती। संसार के सभी लौकिक सम्बन्धों के मूल में शरीर ही प्रमुख होता है, आत्म तत्व नहीं।

मरदन अंगे चंदन चरचे, प्रीते प्रीसे पाक।

सेज्या समारी सेवा करे, जाणे मूल सनमंध साख्यात।।१२।।

सांसारिक लोग अपने प्रिय सम्बन्धी के शरीर पर तेल की मालिश करते हैं, उस पर चन्दन लगाते हैं, और बड़े प्रेम से भोजन परोसते हैं। सुन्दर सेज सजाकर इस प्रकार सेवा करते हैं कि जैसे इस नश्वर शरीर से सृष्टि के प्रारम्भ से ही प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहा हो, अर्थात् ऐसा मानना कि यह शरीर हमेशा से उनके साथ रहा है और भविष्य में भी रहेगा।

आतम टले ज्यारे अंगथी, त्यारे अंग हाथे बाले।

सेवा करतां जे वालपणे, ते सनमंध ऐवो पाले।।१३।।

पर जब जीव शरीर से निकल जाता है, तो जो लोग पहले इतने प्रेम से सेवा करते थे, वे ही उस शरीर को

अपने हाथों से जला देते हैं। उनका शरीर से इतने ही समय तक का सम्बन्ध होता है।

हाथ पग मुख नेत्र नासिका, सहु अंग तेहना तेह।
तेणे घर सहु अभडावियूं, सेवा ते करतां जेह।।१४।।

जिस शरीर की अब तक इतनी आसक्ति के साथ सेवा करते थे, मृत्यु के बाद भी उसके हाथ, पैर, मुख, नेत्र, नासिका आदि पहले के समान ही होते हैं, किन्तु अब उसी शरीर से सारे घर को छूत लगने लगती है।

अंग सर्वे वाला लागे, विछोडो खिण न खमाय।
चेतन चाल्या पछी ते अंग, उठ उठ खावा धाय।।१५।।

मृत्यु से पहले जिसके सभी अंग अत्यन्त प्रिय लगते थे और उनसे एक क्षण का भी वियोग सहन नहीं होता था,

जीव के निकल जाने के बाद शरीर के वही अंग डरावने से लगने लगते हैं। ऐसा लगता है कि जैसे यह मृतक शरीर अभी उठकर हमें खा जायेगा, अर्थात् वह बहुत बुरा (घृणित) लगने लगता है।

सगे मेल्यूं ज्यारे सगपण, त्यारे अंगसूं उपनूं वेर।
ततखिण तेणे झोकी बाली, वेहेंची लीधूं घेर।।१६।।

शरीर का सम्बन्धी जीव जब उससे अपना सम्बन्ध तोड़ लेता है, तो उसी के शरीर के अंगों से सबको शत्रुता हो जाती है। लोग तुरन्त ही उस मुर्दा शरीर को जला देते हैं तथा उसकी सारी सम्पत्ति को आपस में बाँट लेते हैं।

जीव जीवोना सनमंध मेली, करे सगाई आकार।
वैराट कोहेडा एणी विधे, अवला ते कई प्रकार।।१७।।

संसार के जीव अन्य जीवों के साथ आत्मिक सम्बन्ध नहीं रखते, अपितु वे शरीर के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं। ब्रह्माण्ड की यह धुन्ध कई प्रकार से पूर्णतया उलटी है।

विशेष– संसार के सभी सम्बन्ध (भाई–बहन, पिता–पुत्र, पति–पत्नी आदि) शरीर से ही सम्बन्धित होते हैं, आत्मा से नहीं।

एम अवलो अनेक भांते, वैराट नेत्रों अंध।
चेतन विना कहे छोत लागे, वली तेसूं करे सनमंध।।१८।।

इस प्रकार, इस ब्रह्माण्ड के प्राणियों में अन्तर्दृष्टि नहीं होती। वे अनेक प्रकार की उलटी राह अपनाते हैं। शरीर से जीव के निकल जाने पर उसी से छूत मानने लगते हैं, जबकि जीवित रहने पर उसी के साथ मोह का प्रगाढ़

सम्बन्ध बनाये रखते हैं।

एक बेखज विप्रनो, बीजो वेख चंडाल।

छवे छेडे छोत लागे, संग बोले तत्काल।।१९।।

संसार में एक ब्राह्मण वेशधारी होते हैं, तो दूसरा चाण्डाल वेशधारी। चाण्डाल से वस्त्र छू जाने पर भी छूत लगती है और तत्काल अपने वस्त्र धोने पड़ते हैं।

वेख अंतज रूदे निरमल, रमे मांहें भगवान।

देखाडे नहीं केहेने, मुख प्रकासे नहीं नाम।।२०।।

चाण्डाल का हृदय निर्मल होता है। वह आन्तरिक रूप से भगवान के प्रेम में क्रीड़ा करता है और किसी भी प्रकार से अपने प्रेम का दिखावा नहीं करता। वह मुख से भगवान का नाम जपने का कर्मकाण्ड नहीं पालता।

अंतराय नहीं एक खिणनी, सनेह साचे रंग।

अहनिस द्रष्ट आतमनी, नहीं देहसूं संग।।२१।।

वह एक क्षण के लिये भी अपने आराध्य को अपने से अलग नहीं पाता क्योंकि वह प्रेम के सच्चे रंग में रंगा (डूबा) होता है। दिन–रात उसकी आत्मिक दृष्टि खुली ही रहती है। अपने शरीर में उसकी कोई भी आसक्ति नहीं होती।

विप्र वेख बेहेर द्रष्टि, खट करम पाले वेद।

स्याम खिण सुपने नहीं, जाणे नहीं ब्रह्म भेद।।२२।।

ब्राह्मण का वेश धारण करने वाले व्यक्ति की दृष्टि बहिर्मुखी होती है। वह वेद द्वारा निर्देशित षटकर्म (वेद पढ़ना और पढ़ाना, यज्ञ करना और कराना, दान देना और लेना) का पालन करता है, किन्तु हृदय के निर्मल

न होने से स्वप्न में भी उसे परमात्मा का दर्शन नहीं होता। वह ब्रह्म तत्व के गुह्य रहस्यों को भी नहीं जानता।

उदर कुटम कारणे, उत्तमाई देखाडे अंग।
व्याकरण वाद विवादना, अर्थ करे कई रंग।।२३।।

अपने परिवार के भरण–पोषण के लिये मात्र जन्मना जाति की श्रेष्ठता के आधार पर वह अपने अंगों की उत्तमता को प्रदर्शित करता है। व्याकरण की ओट में अपने मिथ्या सिद्धान्त को भी सत्य सिद्ध करने के लिये विवाद के रूप में अनेक प्रकार के अर्थ करता है।

हवे कहो केने छवे छेडे, अंग लागे छोत।
अधमतम विप्र अंगे, चंडाल अंग उद्योत।।२४।।

अब आप ही बताइये कि किस के वस्त्र को छूने पर अंग

में छूत लग सकती है? निश्चित रूप से यही कहना पड़ेगा कि आचरणहीन ब्राह्मण के अंग–अंग में पाप का अन्धकार भरा होता है, जबकि चाण्डाल के अंग–अंग से पवित्रता का प्रकाश फैल रहा होता है।

ओलखाण सहुने अंगनी, आतमनी नहीं द्रष्ट।
वैराटनो फेर अवलो, एणी विधे सहु सृष्ट।।२५।।

संसार में प्रायः सभी लोगों को शारीरिक अंगों की ही पहचान होती है। उनकी अन्तर्दृष्टि बन्द होती है, इसलिये वे आत्मिक स्वरूप की पहचान नहीं कर पाते हैं। इस ब्रह्माण्ड का चक्र ही उलटा है। सारी सृष्टि की स्थिति इसी प्रकार की है।

ए जुओ अचरज अदभुत, चाल चाले संसार।

ए प्रगट दीसे अवलो, जो जुओ करी विचार।।२६।।

हे साथ जी! देखिये, यह संसार जिस उलटी राह पर चल रहा है, वह अद्भुत है। यदि आप विचार करके देखें, तो यह प्रत्यक्ष रूप से उलटी राह पर चलते हुए दिखायी देता है।

सतने असत कहे, असत ने सत करी जाणे।

ते विध कहीस हूं तमने, अवलो एह एधाणे।।२७।।

संसार के जीव सत्य को असत्य कहते हैं तथा असत्य को सत्य रूप में जानते हैं। मैं आपसे इस संसार की वास्तविकता बताऊँगी कि यह किस प्रकार उलटे मार्ग पर चल रहा है।

आकार ने निराकार कहे, निराकारने आकार।

आप फरे सहु देखे फरता, असतने ए निरधार।।२८।।

संसार के ज्ञानीजन जिस ब्रह्म का शुद्ध आकार है, उसे "निराकार" कहते हैं, और शरीर और संसार लय होकर निराकार हो जाने वाले हैं, उन्हें आकार वाला "साकार" कहते हैं। दूसरों को साकार-निराकार (जन्म-मरण) के चक्र में घूमते हुए देखकर स्वयं भी इसी चक्र में घूमते रहते हैं। इस प्रकार यह जगत मिथ्या है।

मूल विना वैराट ऊभो, एम कहे सहु संसार।

तो भरमना जे पिंड पोते, ते केम कहिए आकार।।२९।।

सारे संसार के विद्वतजन यही कहते हैं कि यह ब्रह्माण्ड बिना मूल के खड़ा है अर्थात् इसका उपादान कारण मूल रूप से अनादि नहीं है, बल्कि वह प्रवाह से अनादि और

स्वाप्निक है। इस प्रकार, जिनका शरीर स्वयं मोह तत्व से बना हुआ है, उन्हें आकार वाला कैसे कह सकते हैं?

आकार न कहिए तेहेने, जेहेनो ते थाय भंग।
काल ते निराकार पोते, आकार सच्चिदानंद।।३०।।

जिनका विनाश होता है, उन्हें आकार (शुद्ध साकार) नहीं कहा जा सकता। काल (मोह तत्व) तो स्वयं निराकार है, जबकि सच्चिदानन्द परब्रह्म का आकार (शुद्ध स्वरूप) है।

मृगजल द्रष्टें न राचिए, जेहेनूं ते नाम परपंच।
ए छल छे माया तणो, रच्यो ते अवलो संच।।३१।।

यह सम्पूर्ण संसार प्रपञ्च है, मृगतृष्णा के समान है। इसे देखकर इसके मोह में नहीं फँसना चाहिए। इसे मात्र माया

का छल ही मानना चाहिये, जिसमें झूठ सत्य प्रतीत हो रहा है।

प्रकरण ।।५।। चौपाई ।।१५८।।

वेदनी जाली

वेद का अहंकार

इस प्रकरण में यह दर्शाया गया है कि किस प्रकार विद्वान वेदों (वैदिक ग्रन्थों) के जान-बूझकर उलटे अर्थ करते हैं और संसार को अन्धकार में रखते हैं।

वेद मोटो कोहेडो, जेहेनी गूंथी ते झीणी जाल।
कांईक संखेपे कही करी, दऊं ते आंकडी टाल।।१।।

संस्कृत भाषा की अर्थ सम्बन्धी संशयात्मक स्थिति एवं वर्तमान समय में जन भाषा न होने के कारण वैदिक ग्रन्थों का ज्ञान बहुत बड़े धुन्ध की तरह है, जिसकी जाली बहुत बारीक (पतली) है अर्थात् प्रत्यक्ष देखने में नहीं आती। उसके विषय में संक्षेप में कहकर मैं इस उलझन को समाप्त कर देती हूँ।

वैराट आकार सुपननो, ब्रह्मा ते तेहेनी बुध।

मन नारद फरे मांहें, वेदे बांध्या बंध बेसुध।।२।।

यह सारा ब्रह्माण्ड आदिनारायण के स्वप्न का है। इसमें रहने वाले प्राणियों की बुद्धि ही ब्रह्मा है। जीवों का मन नारद जी की तरह चारों और घूमता रहता है। इस प्रकार, वेद के आधार पर होने वाले कर्मकाण्डों ने जीव को प्रकृति के बन्धनों में बाँधकर बेसुध कर रखा है।

भावार्थ– गुह्यार्थ के रूप में आदिनारायण को मोहतत्व का, ब्रह्माजी को महत्तत्व (बुद्धि) का, तथा नारद जी को मन का प्रतीक माना गया है। जिस प्रकार पौराणिक मान्यता में आदिनारायण से ब्रह्मा एवं ब्रह्मा जी के मानसिक पुत्र के रूप में नारद जी की उत्पत्ति कही जाती है, उसी प्रकार दार्शनिक मान्यता में मोहतत्व से महत्तत्व तथा महत्तत्व से सर्वप्रथम बुद्धि एवं तत्पश्चात् मन की

उत्पत्ति होती है। इसे ही यहाँ प्रतीक रूप में दर्शाया गया है। वेद का चिन्तन–मनन मन–बुद्धि के धरातल पर ही होता है। कर्मकाण्डों की अधिकता के कारण वैदिक ज्ञान को बेसुध करने वाला माना गया है। वस्तुतः वेद का वास्तविक आशय तो समाधि की अवस्था में प्राप्त होता है, जिसमें मन–बुद्धि निष्क्रिय हो जाते हैं।

लगाड्या सहु रब्दे, व्याकरण वाद अंधकार।
एणी बुधे सहु बेसुध कीधां, विवेक टाल्या विचार।।३।।

सामान्य बुद्धि वाले विद्वान जब धर्मग्रन्थों का आशय जानने के लिये व्याकरण का आधार लेते हैं, तो निष्पक्षता एवं तप के अभाव तथा तमोगुण की प्रबलता के कारण वाद–विवाद करने लगते हैं और अज्ञानता के अन्धकार में भटकने लगते हैं। इस प्रकार, उनके विचारों

में विवेक शून्यता आ जाती है।

बंध बांध्या वेदव्यासें, वस्त मात्रना नाम बार।

ते वाणी वखाणी व्याकरणनी, छलवा आ संसार।।४।।

बारह स्वरों के मेल से प्रत्येक शब्द के बारह प्रकार के नाम रखकर वेद व्यास के उपाधिधारी विद्वानों ने इस प्रकार के बन्धन खड़े कर दिये हैं कि वास्तविक सत्य का प्रकाश ही न हो सके। उन्होंने इस संसार को ठगने के लिये व्याकरण शास्त्र की रचना की है।

बारे गमां बोलतां, एक अखर एक मात्र।

ते बांधी बत्रीस श्लोकमां, एवो छल कीधो छे सास्त्र।।५।।

व्यञ्जन के एक अक्षर में अलग-अलग १२ स्वर लगाने पर १२ प्रकार के अर्थ हो जाते हैं। इस प्रकार ३२

व्यञ्जनों वाले श्लोक में अर्थ की भिन्नता कितनी हो सकती है, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। इस प्रकार, शास्त्रों (पौराणिक ग्रन्थों) में अर्थ के सम्बन्ध में बहुत छल भरा हआ है।

लवा लवाना अर्थ जुजवा, द्वादसना प्रकार।

मूल अर्थने मुझवी, बांध्या अटकले अपार।।६।।

इस प्रकार अलग–अलग अक्षरों में १२ स्वरों के मेल से १२ प्रकार के अलग–अलग अर्थ निकलते हैं। विद्वानों ने अपने क्षुद्राशय से धर्मग्रन्थों के मूल कथनों को ही उलटा कर दिया तथा अनुमान से कहानियाँ गढ़कर बहुत अधिक (अपार) पौराणिक साहित्य की रचना कर दी।

अर्थने नाखवा अवलो, गमोगमा ताणे।

मूढोने समझाववा, रेहेस वचमां आंणे।।७।।

संकीर्ण सोच वाले ये विद्वान धर्मग्रन्थों के मूल आशय के विपरीत अपनी मान्यता के अनुसार अर्थ करने के लिये अनेक प्रकार से खींचतान करते हैं। अति मूर्ख लोगों को समझाने के लिये वे बीच-बीच में मनोरंजक कहानियाँ जोड़ देते हैं।

एवी आंकडियो अनेक मांहें, ते ताणे गमां बार।

रंचक रेहेस आंणी मधे, बांध्या बुधे विचार।।८।।

उपरोक्त कथन के समान ही ऐसी कई गुत्थियाँ होती हैं, जिनमें १२ प्रकार से अर्थ बदल जाते हैं। वे बीच-बीच में थोड़ा सा मनोरंजक प्रसंग जोड़ देते हैं। इस प्रकार, वे अपनी बुद्धि से सबके विचारों को बाँध देते हैं।

अखर एक बारे गमां बोले, एवा श्लोक मांहें बत्रीस।

ए छल आंणी अर्थ आडो, खोले छे जगदीस।।९।।

किसी भी श्लोक का अर्थ करने में १२ स्वरों तथा ३२ व्यञ्जनों के परस्पर मेल से जिस प्रकार छलपूर्ण तरीके से परिवर्तन होता है, उससे मुक्त हुए बिना संसार के लोग शास्त्रों के अर्थ द्वारा परमात्मा की खोज करने का जो प्रयास करते हैं, वह आश्चर्य ही है।

एवा छल अनेक अर्थ आडो, ते अर्थ मांहें कई छल।

अखरा अर्थ छल भावा अर्थ आडो, पछे करे भावा अर्थ अटकल।।१०।।

एक श्लोक का अर्थ करने में कई छल करते हैं। इस प्रकार, उस श्लोक के एक-एक शब्द का अर्थ करने में अनेक अर्थ करते हैं। कभी-कभी तो ऐसी भी स्थिति आ जाती है कि श्लोक के एक अक्षर का भी अर्थ करना

कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में अनुमान से ही भावार्थ करना पड़ता है।

ते बेसे पंडित विष्णु संग्रामे, एक काना ने कडका थाय।
मांहोंमाहें वढी मरे, एक मात्र न मेलाय।।११।।

जब पण्डित लोग शास्त्रार्थ के लिये बैठते हैं, तो इस प्रकार झगड़ा करते हैं कि "अ" की मात्रा के भी टुकड़े कर देते हैं। उनमें से कोई भी एक भी मात्रा को छोड़ने के लिये तैयार नहीं होता, भले ही उसके लिये अपने प्राणों को ही क्यों न छोड़ना पड़े।

वादे वाणी सीखे सूरा, सुध बुध जाए सान।
स्वांत त्रास न आवे सुपने, एहवुं व्याकरण गिनान।।१२।।

विद्वतगण विवादों को उत्पन्न करने वाली इसी संस्कृत

भाषा को सीखते हैं। विवादों में उलझे रहने से उनकी सुधि-बुद्धि समाप्त हो जाती है। संस्कृत भाषा के व्याकरण का ज्ञान इस प्रकार विवादों में उलझाने वाला है कि इससे सपने में भी शान्ति नहीं आती।

ते व्यासे कीधी मोटी, दीधूं छलने मान।
तेमां पंडित ताणोंताण करे, मांहें अहंमेव ने अग्नान।।१३।।

व्यास जी ने अर्थ में छल उत्पन्न करने वाली इस भाषा को सम्मानित कर श्रेष्ठ बना दिया। अज्ञान एवं अहंकार के वशीभूत ये पण्डित लोग आपस में खैंचा-खैंच (विवाद) करते रहते हैं।

ए छल पंडित भणीने, मान मूढोमां पामे।
ए मूढ़ पंडित सहु छलना, भूलव्या एणी भोमे।।१४।।

इस छलमयी भाषा को पढ़कर पण्डितजन मूर्खों में सम्मान पाते हैं। यह संसार ही ऐसा है, जिसमें मूर्ख और पण्डित सभी माया के छल से स्वयं को भूले हुए हैं।

आ प्रगट जे प्राकृत, जेमां छल कांई न चाले।
एमां अर्थ न थाय अवलो, ते पंडित हाथ न झाले।।१५।।

वर्तमान समय में जन भाषा के रूप में प्रचलित यह जो हिन्दुस्तानी भाषा है, इसमें किसी भी प्रकार का छल नहीं चल सकता। इसमें कोई उलटा अर्थ नहीं कर सकता, इसलिये पौराणिक पण्डितों को इस भाषा की आवश्यकता नहीं होती।

आ पाधरी वाणी मांहें प्रगट, एक अर्थ नव दाखे।
वचन वलाके त्यारे आणे, ज्यारे छलमां नाखे।।१६।।

यह हिन्दुस्तानी भाषा बहुत ही सीधी एवं सरल है। इसके अर्थ में एक भी शब्द का हेर-फेर नहीं हो सकता। जब किसी को अपने छल में फँसाना होता है, तभी पौराणिक पण्डित इस छल-भरी संस्कृत भाषा के वचनों का प्रयोग करते हैं।

ए छल रामत जेहेनी ते जाणे, बीजी रामत सहु छल।
ए छलना जीव न छूटे छलथी, जो देखो करता बल।।१७।।

इस मायावी जगत की स्थिति ही विचित्र है। इसमें सर्वत्र छल ही छल दृष्टिगोचर हो रहा है। इसके रहस्य को तो मात्र अक्षर-अक्षरातीत परब्रह्म ही जानते हैं, जिन्होंने अपने आदेश से इसकी रचना की है। हे साथ जी! देखिये, माया के जीव भले ही कितने प्रयास क्यों न कर लें, किन्तु वे प्रपञ्चमयी जगत् के बन्धनों से छूटने में

समर्थ नहीं हो पाते हैं।

पेहेली मुझवण कही वैराटनी, बीजी वेदनी मुझवण।
ए संखेपे कही में समझवा, ए छल छे अति घन।।१८।।

मैंने तो आपको इस ब्रह्माण्ड और इसमें ज्ञान का प्रकाश करने वाले वेदों की उलझनों की एक छोटी सी झांकी ही दिखायी है, जबकि वास्तविकता यह है कि वह बहुत है।

मुख उदर केरा कोहेडा, रच्या ते मांहें सुपन।
सुध केहेने थाय नहीं, मांहें झीले ते मोहना जन।।१९।।

अक्षर ब्रह्म के मन के स्वप्न में आदिनारायण के मुख से निकलने वाली साँसों की भांति अति सरलतापूर्वक वेदों का प्रकटन हुआ तथा उनके नाभिकमल से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई। सृष्टि तथा वेद के यथार्थ रहस्य को कोई भी

जान नहीं पाता। संसार के जीव स्वप्न की बुद्धि वाले हैं। वे इसी मोह सागर में क्रीड़ा करते हुए प्रसन्न होते हैं।

वैराट वेदें जोई करी, सेवा ते कीधी एह।
देव तेहेवी पातरी, संसार चाले जेह।।२०।।

इस स्वप्नवत् संसार तथा अथाह ज्ञान वाले वेदों को आदिनारायण की रचना मानकर, इस जगत् के लोगों ने वेदों के प्रति अपार श्रद्धा रखी। "जैसा देवता वैसा ही पूजन" के आधार पर इस संसार के लोग व्यवहार करते हैं।

बोल्या वेद कतेब जे, जेहेनी जेटली मत।
मोह थकी जे उपना, तेहेने ते ए सहु सत।।२१।।

वेद-कतेब में जो कुछ भी कहा गया है तथा जिस

महापुरुष की बुद्धि ने सत्य को जितना आत्मसात् किया है, मोह सागर से उत्पन्न होने वाले जीवों ने इस जगत को ही सत्य मान लिया है।

लोक चौदे जोया वेदे, निराकार लगे वचन।
उनमान आगल कही करी, वली पडे ते मांहें सुंन।।२२।।

मनीषियों ने वैदिक ग्रन्थों के चिन्तन से चौदह लोकों तथा निराकार तक का ज्ञान प्राप्त किया। निराकार से परे अखण्ड बेहद को उन्होंने अनुमान से व्यक्त करना चाहा, किन्तु असफल रहने पर वे पुनः शून्य (निराकार) में ही भटक गये।

प्रगट देखाडूं पाधरा, पांचे ते जुजवा तत्व।
रमे सहु मन मोह मांहें, सहु मननी उतपत।।२३।।

हे साथ जी! अब मैं आपको सीधी बात स्पष्ट रूप से बताती हूँ। मोहतत्व इन पाँच तत्वों से अलग (सूक्ष्म) है। सभी प्राणियों के मन मोह में ही भटकते रहते हैं। सभी प्राणी आदिनारायण के मन से उत्पन्न हुए हैं।

सकल मांहें व्यापक, थावर ने जंगम।
सहु थकी ए असंग अलगो, ए एम कहावे अगम।।२४।।

स्थावर (स्थिर रहने वाले) एवं जंगम (चलायमान) सभी प्राणियों में यह व्यापक है। यह सबसे अलग निर्लेप है। इस प्रकार यह "अगम" अर्थात् मन वाणी की पहुँच से दूर रहने वाला कहा जाता है।

दसो दिसा भवसागर, जुए ते एह सुपन।
आवरण पाखल मोहनूं, निराकार कहावे सुंन।।२५।।

सभी दिशाओं में भवसागर ही दिखायी दे रहा है। वस्तुतः यह अव्याकृत का स्वप्न है। इस ब्रह्माण्ड (समस्त लोकों) के चारों ओर मोहतत्व का आवरण है, जिसे निराकार या शून्य कहते हैं।

ए ब्रह्मांडनो कोई कोहेडो, रामत चौद भवन।
सुर असुर कई अनेक भांते, छलवा छल उतपन।।२६।।

चौदह लोकों का यह ब्रह्माण्ड कोहरे की तरह अन्धकार से पूर्ण है। सभी जीव इसमें क्रीड़ा किया करते हैं। इसमें रहने वाले देवता एवं असुर आदि प्राणियों को छलने (भ्रमित किये रहने) के लिये ही यह छल रूप जगत उत्पन्न हुआ है।

वनस्पति पसु पंखी, मनख जीव ने जंत।

मछ कछ जल सागर साते, रच्यो सहु परपंच।।२७।।

अनन्त प्रकार की वनस्पतियों, पशु, पक्षी, मनुष्य, जल में रहने वाली मछलियों एवं कछुओं से युक्त, सभी प्रकार के जीव-जन्तुओं से सुसज्जित यह जगत सात सागरों वाला है। यथार्थतः यह सम्पूर्ण संसार प्रपञ्चमयी (मिथ्या) है।

जीवों मांहें जिनस जुजवी, उपनी ते चारे खान।

थावर जंगम सहु मली, लाख चौरासी निरमान।।२८।।

इस संसार के जीवों में चार प्रकार की अलग-अलग सृष्टि है, जो इस प्रकार है- १. अण्डज २. पिण्डज ३. उद्भिज ४. स्वेदज। इनमें स्थावर (स्थिर रहने वाली) और जंगम (चलायमान) सभी प्राणी मिलकर चौरासी

लाख योनियों के अन्तर्गत आते हैं।

कोई वैकुंठ कोई जमपुरी, कोई स्वर्ग पाताल।
रमे पांचेना मांहें पुतला, बीजा सागर आडी पाल।।२९।।

चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में कुछ प्राणी वैकुण्ठ में रहते हैं, तो कुछ नर्क (यमपुरी), स्वर्ग, और पाताल में भी रहते हैं। सबके शरीर त्रिगुणात्मक एवं पाँच तत्व के ही होते हैं। इस ब्रह्माण्ड के चारों ओर मोहसागर का आवरण होता है।

ए रामतनो वेपार करे, तेहेने माथे जमनो दंड।
कोइक दिन स्वर्ग सोंपी, पछे नरक ने कुंड।।३०।।

इस मायावी खेल में जीवों द्वारा शुभ-अशुभ कर्मों का जो व्यापार होता है, उसके फलस्वरूप यमराज के दण्ड

के अनुसार उन्हें कुछ दिनों तक स्वर्ग का सुख मिलता है, तत्पश्चात् नर्क के कुण्डों में दुःख भोगना पड़ता है।

तेरे लोके आण फरे, संजमपुरी सिरदार।
जे जाणे नहीं जगदीसने, ते खाय मोहोकम मार।।३१।।

वैकुण्ठ के अतिरिक्त अन्य तेरह लोकों में यमपुरी के स्वामी यमराज का शासन चलता है। जो जीव भगवान विष्णु की भक्ति नहीं करते हैं, उन्हें यमराज के दण्ड का असह्य कष्ट भोगना पड़ता है।

ए रामतनी लेव देव मेली, करे वैकुंठनों वेपार।
ए जीवोंनी मोच्छ सतलोक, कोई पार निराकार।।३२।।

इस पृथ्वी लोक में जो लोग स्वर्ग के देवी-देवताओं को छोड़कर एकमात्र विष्णु भगवान की भक्ति करते हैं, उन्हें

वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है। जीवों का यही मोक्ष धाम है। कोई इसे भी पारकर निराकार को प्राप्त होते हैं।

चौदलोक इंडा मधे, भोम जोजन कोट पचास।

अष्ट कुली पर्वत जोजन, लाख चौसठ वास।।३३।।

श्रीमद्भागवत् के अनुसार चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में यह पृथ्वी लोक ५० करोड़ योजन में है। ८ लाख योजन में सभी पर्वत हैं तथा ६४ लाख योजन में मनुष्यों की बस्ती है।

पांच तत्व छठी आतमां, सास्त्र सर्व मां ए मत।

ए निरमाण बांधीने, लई सुपन कीधूं सत।।३४।।

सभी शास्त्रों का ऐसा मत है कि पाँच तत्वों के इस शरीर में छठवाँ पदार्थ आत्मा (जीव) चैतन्य है। इस प्रकार की

धारणा बनाकर शास्त्रों के मर्मज्ञों ने इस स्वप्नमयी जगत को ही सत्य मान लिया है।

जोया ते साते सागर, अने जोया ते साते लोक।
पाताल साते जोइया, जाग्या पछी सहु फोक।।३५।।

मैंने सातों सागरों सहित इस पृथ्वी लोक का निरीक्षण किया। इसके अतिरिक्त ऊपर के छः अन्य लोकों और सातों समुद्रों के किनारे स्थित सात पाताल लोकों को भी देखा, किन्तु तारतम वाणी के प्रकाश में जाग्रत होकर देखने पर तो ऐसा लगता है कि चौदह लोकों का यह ब्रह्माण्ड है ही नहीं।

प्रकरण ।।६।। चौपाई ।।१९३।।

अवतारोंना प्रकरण

अवतारों का प्रकरण

इस प्रकरण में विष्णु भगवान के अवतारों के साथ जाग्रत बुद्धि के अवतार का भी वर्णन किया गया है।

एह छल तां एवो हुतो, जेमां हाथ न सूझे हाथ।
द्रष्ट दीठे बंध पडे, तेमां आव्यो ते सघलो साथ।।१।।

तारतम ज्ञान के अवतरण से पूर्व यह मायावी जगत अज्ञानता के अन्धकार से इस प्रकार भरा हुआ था कि इसमें एक हाथ को दूसरे हाथ का भी पता नहीं था, अर्थात् किसी को भी न तो अपने निज स्वरूप के विषय में पता था और न किसी अन्य के सम्बन्ध में पता था। यहाँ के सांसारिक सुखों के प्रति दृष्टि मात्र से उनके मोह बन्धन में बँधना पड़ जाता है। सब सुन्दरसाथ ऐसे

छलमयी संसार में आये हुए हैं।

ते माटे वालेजीए, आवीने छोड्यो साथ।

बीज ल्यावी घर थकी, कीधो जोतनो प्रकास।।२।।

इसलिये प्रियतम अक्षरातीत ने परमधाम से आकर सुन्दरसाथ को माया के बन्धन से छुड़ाया। उन्होंने परमधाम से तारतम ज्ञान का बीज लाकर मेरे हृदय रूपी खेत में बोया, जिसके परिणाम स्वरूप अब तारतम वाणी के रूप में निज घर के ज्ञान का प्रकाश फैल रहा है।

ए रामत करी तम माटे, तमे जोवा आव्या जेह।

रामत जोई घर चालसूं, वातो ते करसूं एह।।३।।

हे साथ जी! यह माया का खेल आपको देखने के लिये ही बनाया गया है और आप भी इस स्वप्नमयी खेल को

देखने के लिये ही आये हैं। हम इस मायावी जगत की लीला को देखकर जब परमधाम चलेंगे, तो वहाँ पहुँचकर यहाँ की सारी बातें करेंगे।

हवे चौद लोक चारे गमां, में मथ्या जोई वचन।
मोहजल सागर मांहेंथी, काढ्या ते पांच रतन।।४।।

मैंने चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड में विद्यमान सम्पूर्ण ज्ञान का मन्थन किया और इस मोह सागर में से अक्षर ब्रह्म की सुरता रूप पाँच रत्नों को निकाला।

पेहेलां कह्या में साथने, पांचे तणां ए नाम।
सुकदेव ने सनकादिक, महादेव भगवान।।५।।

पहले, अर्थात् प्रकाश ग्रन्थ में, मैं इन पाँचों रत्नों के नाम बता चुकी हूँ। ये इस प्रकार हैं– १. शुकदेव जी २.

सनकादिक ३. भगवान शिव ४. भगवान विष्णु ५. कबीर जी।

नारायण लखमी विष्णु मांहें, विष्णु थकी उतपन।
अंग समाय अंगमां, ए नहीं वासना अंन।।६।।

लक्ष्मी जी और नारायण जी की उत्पत्ति महाविष्णु (आदिनारायण) से हुई है। ये उनके अंग होने से उन्हीं में एकरूप हो जाते हैं। इन्हें अलग से सुरता के रूप में नहीं लेना चाहिए।

कबीर साखज पूरवा, लाव्यो ते वचन विसाल।
प्रगट पांचे ए थया, बीजा सागर आडी पाल।।७।।

साक्षी देने के लिये कबीर जी बेहद का विशेष ज्ञान प्रत्यक्षतः लेकर आये। इस प्रकार इन पाँचों ने अखण्ड

का ज्ञान दिया। शेष अन्य लोग भवसागर में भटकते रहे। वे अपने चारों ओर विद्यमान अनन्त निराकार रूपी दीवार (बाँध) का उल्लंघन नहीं कर सके।

वली एक कागल काढिया, सुकदेवजीनो सार।
हदियो ना कोहेडा, वेहदी समाचार।।८।।

पुनः मैंने भागवत नामक एक और ग्रन्थ निकाला, जो शुकदेव जी द्वारा बेहद के रूप में कहा गया है। यह ग्रन्थ संसार के लोगों के लिये कुहरे के समान है, किन्तु इसमें बेहद मण्डल का ज्ञान दिया हुआ है।

तमे रामत जोवा कारणे, इच्छा ते कीधी एह।
ते माटे सहु मापियूं, आ कह्यूं कौतक जेह।।९।।

हे साथ जी! आपमें माया का खेल देखने की इच्छा थी,

इसलिये आपने यहाँ आकर इसका मूल्यांकन किया। वस्तुतः यह संसार एक प्रकार का नाटक कहा जाता है।

अमे रामत खरी तो जोई, जो अखंड करूं आवार।
बुधने सोभा दऊं, सत करी प्रगट पार।।१०।।

हमारे द्वारा इस मायावी खेल को देखने की सार्थकता स्पष्ट रूप से तभी सिद्ध होगी, जब मैं जाग्रति बुद्धि द्वारा संसार में निराकार-बेहद से परे परमधाम का ज्ञान फैलाकर इस बार इसे अखण्ड कर दूँ।

अवतार चौवीस विष्णुना, वैकुंठ थी आवे जाय।
ते विध सर्वे कहूं विगते, जेम सनंध सहु समझाय।।११।।

धर्मग्रन्थों के अनुसार वैकुण्ठ में विद्यमान भगवान विष्णु के २४ अवतार इस पृथ्वी लोक में हुआ करते हैं। अतीत

में हुए उन सभी अवतारों की वास्तविकता मैं आपको बताने जा रही हूँ, जिससे सबको पूर्ण रूप से समझ में आ जाये।

अवतार एकवीस ए मधे, ते आडो थयो कल्पांत।
बीजा त्रण जे मोटा कह्या, तेहेनी कहूं जुजवी भांत।।१२।।

इस संसार में भगवान विष्णु के २१ अवतारों की लीला के पश्चात् कल्पान्त में होने वाले प्रलय की भांति प्रलय हो गया। इसके पश्चात् जो तीन बड़े अवतार होते हैं, उनकी वास्तविकता को अलग से दर्शाती हूँ।

अवतार एक श्रीकृष्णनों, मूल मथुरा प्रगट्यो जेह।
वसुदेवने वायक कही, वैकुंठ वलियो तेह।।१३।।

एक अवतार श्री कृष्ण जी का हुआ, जो मूलतः मथुरा में

प्रकट हुआ। इस अवतार ने वसुदेव जी को समझाया कि अभी आपको क्या-क्या करना है। इसके पश्चात् वे अपने वैकुण्ठ धाम चले गये।

गोकुल सरूप पधारियो, तेहेने न कहिए अवतार।
ए तो आपणी अखंड लीला, तेहेनो ते कहूं विचार।।१४।।

गोकुल में जो स्वरूप विराजमान हुआ, उसे अवतार नहीं कहना चाहिये। यह स्वरूप तो उस अखण्ड परमधाम का है, जहाँ अपनी अखण्ड लीला है। अब उसके सम्बन्ध में मैं अपने विचार बताती हूँ।

संखेपे कहूं में समझवा, भाजवा मननी भ्रांत।
एहेनो छे विस्तार मोटो, आगल कहीस वृतांत।।१५।।

आपके मन के संशय मिटाकर आपको समझाने के लिये

ही मैंने संक्षेप में ऐसा कहा है। यद्यपि इसका विस्तार बहुत है, जिसका वर्णन मैं आगे करूँगी।

कल्पांत भेद आंही थकी, तमे भाजो मनना संदेह।
अवतार ते अक्रूर संगे, जई लीधी मथुरा ततखेव।।१६।।

कल्पान्त का भेद यहीं तक है। हे साथ जी! अब आप इस सम्बन्ध में अपने मन के संशय मिटा लीजिए। अक्रूर जी के साथ जो तन तत्क्षण गोपियों को छोड़कर मथुरा के लिये चल पड़ा, उसके साथ ही अवतार की लीला प्रारम्भ होती है।

विचार छे वली ए मधे, तमे सांभलो दई चित।
आसंका सहु करूं अलगी, कहूं तेह विगत।।१७।।

इस घटना के मध्य मेरा एक और कथन है, जिसे आप

सावधान चित्त से सुनिये। मैं उस स्वरूप की वास्तविकता को दर्शाकर आपके सभी संशयों को दूर कर देती हूँ।

दिन अग्यारे भेख लीला, संग गोवालो तणी।
सात दिन गोकुल मधे, पछे चाल्या मथुरा भणी।।१८।।

ग्यारह दिनों तक श्री कृष्ण जी ने ग्वालों के भेष में गोप बालकों के साथ लीला की। इसमें सात दिनों तक उन्होंने गोकुल में लीला की और उसके पश्चात् मथुरा के लिये चल पड़े।

धनक भाजी हस्ती मल्ल मारी, त्यारे थया दिन चार।
कंस पछाडी वसुदेव छोडी, इहां थकी अवतार।।१९।।

मथुरा में उन्होंने धनुष को तोड़कर कुवलयापीड़ हाथी,

तथा चाणूर एवं मुष्टिक नामक पहलवानों का वध किया। ऐसी लीला करते हुए चार दिन बीत गये। जब कंस को मारकर अपने पिता वसुदेव जी को उन्होंने कारागार से मुक्त किया, तो वहाँ से (राजसी वस्त्र धारण करने के पश्चात्) ही अवतार की लीला प्रारम्भ होती है।

जुध कीधूं जरासिंधसूं, रथ आउध आव्या जिहां थकी।
कृष्ण विष्णु मय थया, वैकुंठमां विष्णु त्यारे नथी।।२०।।

जब उन्होंने जरासिन्ध से युद्ध किया, तो उनके दिव्य रथ और अस्त्र-शस्त्र वहाँ उपस्थित हो गये। अब श्री कृष्ण जी विष्णु रूप हो गये। उस समय वैकुण्ठ में विष्णु नहीं थे, बल्कि वे श्री कृष्ण जी के रूप में मथुरा आ गये थे।

वैकुंठ थी जोत वली आवी, सिसुपाल होम्यो जेह।
मुख समानी श्रीकृष्णने, पूरी साख सुकदेवे तेह।।२१।।

जब श्री कृष्ण जी ने शिशुपाल का वध किया, तो उसकी जीव रूपी ज्योति वैकुण्ठ से लौट आयी, क्योंकि वहाँ विष्णु नहीं थे। वह मथुरा में आकर श्री कृष्ण जी के मुख में प्रवेश कर गयी। इस घटना की सम्पूर्ण साक्षी शुकदेव जी ने श्रीमद्भागवत् के दशम स्कन्ध में दी है।

कीधूं राज मथुरा द्वारका, वरस एक सो ने बार।
प्रभास सहु संघारीने, उघाड्या वैकुंठ द्वार।।२२।।

श्री कृष्ण जी ने मथुरा एवं द्वारिका में कुल ११२ वर्षों तक राज्य किया। इसके पश्चात्, प्रभास क्षेत्र में यदुवंशियों का संहार करके वैकुण्ठ चले गये।

दिन आटला गोप हुतो, मोटी बुधनो अवतार।
लवलेस कांइक कहूं एहेनो, आगल अति विस्तार।।२३।।

आज दिन तक जाग्रत (बड़ी) बुद्धि के अवतार का रहस्य छिपा पड़ा था। अभी मैं इसके विषय में थोड़ा सा ही बताती हूँ। आगे बहुत विस्तार से बताऊँगी।

कोइक काल बुध रासनी, ग्रही जोगवाई सकल।
आवी उदर मारे वास कीधो, वृध पामी पल पल।।२४।।

कुछ समय तक, महारास के पश्चात् वि.सं. १६७८ तक जाग्रत बुद्धि रास के आनन्द में मग्न रही। अब मेरे हृदय में वि.सं. १७१२ में आकर विराजमान हो गयी। उसके ज्ञान में धनी के आवेश से पल-पल वृद्धि होती गयी।

अंग मारे संग पामी, में दीधूं तारतम बल।

ते बल लई वैराट पसरी, ब्रह्मांड थासे निरमल।।२५।।

मेरे धाम–हृदय में जाग्रत बुद्धि ने धनी के चरणों का सान्निध्य प्राप्त किया। मैंने उसे तारतम का बल (ज्ञान) प्रदान किया, जिसे ग्रहण कर वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में फैलकर उसे निर्मल बना देगी।

दैत कालिंगो मारीने, सनमुख करसे तत्काल।

लीला अमारी देखाडीने, टालसे जमनी जाल।।२६।।

यह जाग्रति बुद्धि अज्ञान (कलियुग) रूपी राक्षस को मारकर तत्काल इस ब्रह्माण्ड को अक्षर ब्रह्म की दृष्टि में अखण्ड (सम्मुख) कर देगी। हमारी परमधाम की लीला की पहचान कराकर सभी को जन्म–मरण के चक्र से छुटकारा दिलायेगी।

भावार्थ– कलियुग (अज्ञान) को ही कतेब परम्परा में दज्जाल कहा गया है। तारतम वाणी का प्रकाश जिन लोगों तक पहुँच जाता है, एकमात्र वे ही अपने अन्दर विद्यमान कलियुग (अज्ञान) रूपी राक्षस का विनाश कर पाते हैं। ब्रह्माण्ड के सभी जीवों का अज्ञान तो योगमाया में ही नष्ट हो पायेगा और तभी ये अखण्ड भी होंगे।

आ देखो छो दैत जोरावर, व्यापी रह्यो वैराट।
काम क्रोध उनमद अहंकार, चाले आपोपणी वाट।।२७।।

हे साथ जी! जरा देखिये तो, यह अज्ञान रूपी राक्षस कितना शक्तिशाली है, जो सम्पूर्ण सृष्टि में फैला हुआ है। इसके अधीन होकर ही काम, क्रोध, मद, अहंकार आदि उलटी दिशा में चल रहे हैं।

वैराट आखो लोक चौदे, चाले आपोपणी मत।

मन माने रमे सहुए, फरीने वल्यूं असत।।२८।।

चौदह लोक वाले इस ब्रह्माण्ड के सभी प्राणी माया के अधीन होकर उलटी बुद्धि से चल रहे हैं। सभी लोग बार-बार झूठ के वशीभूत होकर सत्य को नकारते हैं और मनमाने ढंग से आचरण करते हैं।

एणे संघारसे एक सब्दसों, बार न लागे लगार।

लोक चौदे पसरसे, ए बुध सब्दनों मार।।२९।।

इस कलियुग (अज्ञान) रूपी दैत्य को मैं अपने आदेश के एक शब्द मात्र से ही नष्ट कर दूँगी। इसके समाप्त होने में थोड़ी भी देर नहीं लगेगी और जाग्रत बुद्धि का यह अखण्ड ज्ञान चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र ही फैल जायेगा।

हूं मारूं तो जो होय कांइए, न खमे लवानी डोट।

मारी बुधने एक लवे एवा, मरे ते कोटान कोट।।३०।।

यह कलियुग रूपी राक्षस कोई विशेष शक्ति वाला हो, तो मैं मारूँ भी। यह तो मेरे एक शब्द की भी चोट को सहन नहीं कर सकता। मेरी जाग्रत बुद्धि के एक शब्द मात्र से ऐसे करोड़ों कलियुग पल-भर में नष्ट हो सकते हैं।

भावार्थ- यह अतिशयोक्ति अलंकार की भाषा है। ब्रह्मज्ञान का प्रकाश हमारे अज्ञान रूपी अन्धकार को पल-भर में ही समाप्त कर सकता है।

उठी छे वाणी अनेक आगम, एहेनो गोप छे अजवास।

वैराट आखो एक मुख बोले, बुधने प्रकास।।३१।।

यद्यपि जाग्रत बुद्धि के प्रकटन के सम्बन्ध में बहुत सी

भविष्यवाणियाँ की गयी हैं, किन्तु अभी इसका उजाला छिपा हुआ है। जाग्रत बुद्धि के ज्ञान का प्रकाश फैल जाने पर सारे ब्रह्माण्ड के प्राणी एकमात्र परम सत्य की ही बातें करेंगे।

चालसे सहु एक चाले, बीजूं ओचरे नहीं वाक।
बोले तो जो कांई होय बाकी, चूंथी उडाड्यूं तूल आक।।३२।।

उस समय सभी लोग एक अक्षरातीत के प्रेम मार्ग पर ही चलेंगे। कोई भी दूसरी बात (बहुदेववाद) नहीं बोलेगा। परमात्मा के अतिरिक्त अन्य की भक्ति की बात तो तब होगी, जब उनके अन्दर थोड़ा सा भी अज्ञान शेष रहेगा। जाग्रत बुद्धि के ज्ञान की वायु, अज्ञान को आक के तूल (मदार की रुई) की भांति उड़ा देगी।

विशेष– उपरोक्त कथन पूर्ण रूप से योगमाया के

ब्रह्माण्ड में ही चरितार्थ होगा, जहाँ सबकी बुद्धि समान रूप से जाग्रत होगी।

हवे एह वचन कहूं केटला, एनो आगल थासे विस्तार।
मारे संग आवी निध पामी, ते निराकार ने पार।।३३।।

अब इस बात को मैं कितना कहूँ। जाग्रत बुद्धि के नाम से होने वाली लीला का विस्तार तो आगे ही होगा। मेरी संगति पाने से इस जाग्रत बुद्धि को निराकार–बेहद से परे परमधाम की अखण्ड लीला का ज्ञान मिला है।

पार बुध पाम्या पछी, एहेनों मान मोटो थासे।
अछर खिण नव मूके अलगी, मारी संगते एम सुधरसे।।३४।।

परमधाम की निज बुद्धि का ज्ञान (पचीस पक्षों की शोभा, श्रृंगार, और लीला) पाने के पश्चात् अक्षर ब्रह्म की

जाग्रति बुद्धि की शोभा बहुत अधिक बढ़ जायेगी और उस (शोभा, लीला) ज्ञान को अक्षर ब्रह्म एक पल के लिये भी अपने से अलग नहीं करेंगे। मेरी संगति में जाग्रत बुद्धि की गरिमा इतनी बढ़ जायेगी।

भावार्थ– जाग्रत बुद्धि तथा निज बुद्धि को एक ही मानने वाले सुन्दरसाथ को इस चौपाई के ऊपर चिन्तन करना चाहिए। यदि जाग्रत बुद्धि ही निज बुद्धि है, तो उपरोक्त चौपाई के पहले चरण का क्या अर्थ होगा? क्या अक्षर ब्रह्म और जाग्रत बुद्धि को युगल स्वरूप की शोभा–श्रृंगार एवं अष्ट प्रहर की लीला का ज्ञान था? यदि नहीं, तो इस लीला का ज्ञान किस बुद्धि के अन्तर्गत माना जायेगा?

अवतार जे नेहेकलंकनो, ते अस्व अधूरो रह्यो।

पुरख दीठो नहीं नैने, तुरीने कलंकी तो कह्यो।।३५।।

धर्मग्रन्थों में जिस विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक अवतार का वर्णन किया गया है, वह अपने पहले तन की लीला में पूर्ण रूप से प्रकाश में नहीं आ सका। उस लीला में परमधाम का पूर्ण ज्ञान न होने से लोगों के आत्म-चक्षु नहीं खुल पाये, परिणाम स्वरूप किसी को भी अक्षरातीत की पूर्ण पहचान नहीं हो सकी। यही कारण है कि जाग्रत बुद्धि रूपी उस घोड़े को कलंकित (कलंकी) कहा गया है।

भावार्थ- जिस प्रकार, व्रज लीला में श्री कृष्ण जी के दो अवतार- मथुरा के कारागार में प्रकट होने वाला तथा जरासिन्ध से युद्ध करने वाला- सिद्ध होते हैं। उसी प्रकार, इस जागनी ब्रह्माण्ड में भी जाग्रत बुद्धि के दो अवतार कहे जाते हैं- १. बुद्धावतार २. निष्कलंक बुद्धावतार। ये दोनों अवतार क्रमशः दो तनों (श्री देवचन्द्र

जी तथा श्री मिहिरराज जी) से सम्पादित हुए। इस प्रकार, भगवान विष्णु के २०वें अवतार राम के पश्चात् ये चारों अवतार हुए।

अवतार आ बुधना पछी, हवे बीजो ते थाय केम।
विकार काढी सहु विस्वना, सहु कीधां अवतारना जेम।।३६।।

इस विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक अवतार के बाद अब दूसरा अवतार कैसे हो सकता है? अक्षर ब्रह्म की जाग्रत बुद्धि ने इस संसार में प्रथम बार अवतरित होकर सम्पूर्ण विश्व के अज्ञान जनित अवगुणों (संशयों) को समाप्त कर दिया है।

अवतारथी उत्तम थया, तिहां अवतारनों सूं काम।
कीधो सरवालो सहुनो, इहां बीजो न राख्यूं नाम।।३७।।

अब तक के विष्णु भगवान के सभी अवतारों से जो काम नहीं हो सका था, वह उत्तम कार्य इस निष्कलंक अवतार से हुआ है। ऐसी अवस्था में भगवान विष्णु के अन्य किसी अवतार की आवश्यकता ही क्या है? इस अवतार से प्रकट होने वाले ज्ञान में सभी ग्रन्थों (वेद-कतेब) का ज्ञान समाहित हो जाता है, और उन रहस्यों का भी स्पष्टीकरण हो जाता है जिनका समाधान सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर आज तक नहीं हो सका था। इस प्रकार, अब किसी अन्य ग्रन्थ में थोड़ा भी खोज करने (भटकने) की कोई आवश्यकता नहीं है।

पैया देखाड्या पारना, अविचल भान उदे थयो।

तिहां अगिया अवतारमां, अजवास इहां स्यो रह्यो।।३८।।

इस अवतार द्वारा परमधाम का अखण्ड ज्ञान रूप सूर्य

उग गया है, जिससे सभी को निराकार से परे बेहद एवं परमधाम के साक्षात्कार का मार्ग मिल गया है। इस अवस्था में भगवान विष्णु के अवतारों द्वारा मिलने वाले जुगनू के समान प्रकाश वाले ज्ञान की आवश्यकता ही क्या है।

एणी पेरे तमे प्रीछजो, अवतार न थाय अंन।
पुरख तां पेहेलो न कह्यो, विचारी जुओ वचन।।३९।।

हे साथ जी! अब आप इस विवेचना द्वारा अच्छी प्रकार से समझ लीजिए कि इस निष्कलंक अवतार के पश्चात् अब कोई भी दूसरा अवतार नहीं होने वाला है। यदि आप तारतम वाणी के वचनों का विचार करके देखें, तो यह स्पष्ट होगा कि पहले तन की लीला में घोड़े को अधूरा कहा गया है क्योंकि उस पर सवार पुरुष (परब्रह्म) की

पहचान किसी को भी नहीं हो सकी थी।

रखे कहेने धोखो रहे, आ जुआ कह्या अवतार।
तो ए केहेनी बुधें विष्णुने, जगवी पोहोंचाड्यो पार।।४०।।

किसी के भी मन में धोखा न रह जाये, इसलिये मैंने इन दोनों अवतारों को बुद्धावतार तथा निष्कलंक बुद्धावतार कहकर वर्णित किया है। अब विचारणीय तथ्य है कि इसमें से वह कौन सा अवतार है, जो विष्णु भगवान को भी जाग्रत करके निराकार से पार करेगा।

सुकजीए अवतार सहु कह्या, पण बुधमां रह्यो संदेह।
एहेनो चोख करी नव सक्यो, तो केम कहे लीला एह।।४१।।

शुकदेव जी ने विष्णु भगवान के सभी अवतारों का वर्णन किया, किन्तु इस बुद्धावतार के विषय में वे संशयग्रस्त

रहे। जब वे दोनों अवतारों के स्वरूप को अलग-अलग दर्शा करके स्पष्ट नहीं कर सके, तो इन अवतारों द्वारा होने वाली लीला के सम्बन्ध में भला क्या कह सकते थे।

ए तो अक्षरातीतनी, लीला अमारी जेह।
पेहेले संसा सहु भाजीने, वली कहीस कांईक तेह।।४२।।

व्रज, रास, और जागनी की ये लीलायें अक्षरातीत द्वारा हमारे साथ की गयी हैं। मैं तारतम वाणी द्वारा सबके संशयों को मिटाकर पुनः उसके विषय में कुछ कहूँगी।

वैराटनी विध कही तमने, रखे राखो मन संदेह।
अखंड गोकुल ने प्रतिबिंब, वली कही प्रीछवुं तेह।।४३।।

हे साथ जी! मैंने आपसे इस ब्रह्माण्ड की वास्तविकता बता दी है। अब आप अपने मन में किसी भी प्रकार का

संशय न रखें। अखण्ड व्रज (गोकुल) लीला तथा प्रतिबिम्ब लीला के विषय में मैं पुनः कह रही हूँ, उसे समझिये।

अजवास अखंड अमकने, नहीं अंतराय पाव रती।
रास रमी गोकुल आव्या, प्रतिबिंब लीला इहां थकी।।४४।।

हमारे पास जाग्रत बुद्धि के ज्ञान का अखण्ड प्रकाश है, इसलिये हमारे तथा धाम धनी के बीच नाममात्र (चौथाई रत्ती) भी अलगाव (भेद) नहीं है। रास खेलने के पश्चात् तो हम परमधाम चले गये, किन्तु हमारी व्रज की लीला में अखण्ड होने वाले कुमारिकाओं के जीव जब इस नये ब्रह्माण्ड के गोकुल में आये, तो यहाँ से प्रतिबिम्ब लीला प्रारम्भ होती है।

तारतम सूरज प्रगट्यो, सकल थयो प्रकास।

लागी सिखरो पाताल झलक्यो, फोडियो आकास।।४५।।

तारतम ज्ञान रूपी सूर्य के प्रकट हो जाने से चारों ओर ज्ञान का उजाला हो गया। यह प्रकाश पाताल से लेकर वैकुण्ठ तक फैल गया तथा इसका प्रकाश निराकार को पार करके बेहद में भी प्रवेश कर गया।

किरणां सघले कोलांभियो, गयो वैराटनो अग्नान।

द्रढाव चोकस लोक चौदनो, उडाड्यूं उनमान।।४६।।

जाग्रत बुद्धि के ज्ञान की किरणें सर्वत्र फैल गयीं, जिससे इस ब्रह्माण्ड का अज्ञान रूपी अन्धकार नष्ट हो गया। तारतम ज्ञान के चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड में प्रचलित अनुमान के ज्ञान को हटाकर एक अक्षरातीत परब्रह्म के प्रति अटूट निष्ठा स्थापित कर दी।

विशेष– उपरोक्त चौपाइयों (४५–४६) का कथन योगमाया के ब्रह्माण्ड में ही पूर्ण रूप से घटित होगा।

वली जोत झाली नव रहे, वचमां विना ठाम।
अखंड मांहें पसरी, देखाड्यो वृज विश्राम।।४७।।

अब तारतम ज्ञान की ज्योति लक्ष्य तक पहुँचे बिना इस ब्रह्माण्ड में कहीं भी नहीं रुक सकती। अब वह अखण्ड बेहद में पहुँचकर व्रज की आनन्दमयी लीला का दर्शन करा रही है।

प्रकरण ।।७।। चौपाई ।।२४०।।

गोकुल लीला

आ जुओ रे आ जुओ रे आ जुओ रे हो साथ जी,

गोकुल लीला आपणी हो साथ जी।

विध सर्वे कहूं विगते, वृज वस्यो जेणी पेर।

अग्यारे वरस लीला करी, रास रमीने आव्या घेर।।१।।

हे साथ जी! देखिए! देखिए! देखिए! यह हमारी अपनी व्रज लीला है। व्रज मण्डल जिस प्रकार बसा है, उसकी सम्पूर्ण वास्तविकता का वर्णन मैं आपको बता रही हूँ। व्रज में ग्यारह वर्ष तक लीला करने के बाद हमने योगमाया में रास की, तत्पश्चात् घर आये।

गोकुल जमुना त्रट भलो, पुरा बेतालीस वास।

पासे पुरो एक लगतो, ए लीला अखंड विलास।।२।।

यमुना जी के किनारे अति सुन्दर गोकुल ग्राम बसा हुआ है, जिसमें ४२ पुरे हैं। इन पुरों के पास एक और पुरा भी है। इस व्रज मण्डल में अखण्ड आनन्द की लीला हो रही है।

वास वसती वसे घाटी, त्रण खूंने ना गाम।

कांठे पुरो टीवा ऊपर, उपनंदनो ए ठाम।।३।।

नदी के तट के नीचे (स्थल भाग की ओर) इस पुरे की बस्ती बसी हुई है। यह स्थान तिकोने आकार में बसा हुआ है। इस पुरे में कोने पर एक टीला है, जिस पर उपनन्द जी का निवास है।

पुरा सहु बीजी गमां, वचे वाट धेननो सेर।

इहां रमे वालो सकल मांहें, गोवालो ने घेर।।४।।

सभी पुरे इस पुरे की दूसरी ओर आये हैं। इन पुरों के बीच में गायों के आने-जाने का रास्ता बना हुआ है। इन सभी पुरों में श्री कृष्ण जी ग्वाल बालकों के साथ उनके घरों में अति प्रेमपूर्वक खेला करते हैं।

पुरो पटेल सादूलनो, बीजी ते गमां एह।

व्रखभानजी त्रीजी गमां, पुरो दीसे लांबो तेह।।५।।

सादूल पटेल का पुरा दूसरी ओर बसा हुआ है। वृषभान जी का पुरा तीसरी ओर है। इनका पुरा लम्बाई में बसा हुआ दिखायी दे रहा है।

नंदजीना पुरा सामी, दिस पूरव जमुना त्रट।

छूटक छाया वनस्पति, वृध आडी डालो वट।।६।।

नन्द जी के पुरे के सामने पूर्व दिशा में यमुना जी का तट आया हुआ है। यहाँ पर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर वृक्षादि लगे हुए हैं। वट का एक पुराना वृक्ष भी है, जिसकी डालियाँ सामने लटकी हुई हैं।

सकल वन सोहामणूं, सोभित जमुना किनार।

अनेक रंगे वेलडी, फल सुगंध सीतल सार।।७।।

यमुना जी का तट तथा सम्पूर्ण वन बहुत सुन्दर शोभा ले रहा है। वन में अनेक रंगों की लतायें हैं। फलों तथा फूलों की सुगन्धि से युक्त शीतल हवा मन्द-मन्द बह रही है।

नंदजीना पुरा पाखल, पुरा त्रण मामाओ तणा।

ठाट वस्ती आखे पुरा, आप सूरा त्रणे जणा।।८।।

नन्द जी के पुरे के पीछे तीन मामाओं के पुरे हैं। सभी पुरों की आबादी घनी हैं। तीनों मामा बहुत ही वीर हैं।

गांगो चांपो अने जेतो, ए मामा त्रणेना नाम।

दखिण दिस ने पछिम दिस, वीटी बेठा गाम।।९।।

तीनों मामाओं के नाम गंगा, चांपा, और जेता हैं। इनके पुरे दक्षिण और पश्चिम दिशा में घेरकर आये हैं।

आठ मंदिर नंद जी तणा, मांडवे एक मंडाण।

पाछल वाडा गौतणा, मांहें आथ सर्वे जाण।।१०।।

नन्द जी के गृह में आठ कक्ष हैं। उनके बीच में आँगन

है। इसके पीछे गौओं का बाड़ा है, जिसमें सभी गोधन (गायों का समूह) रहता है।

रेत झलके मांडवे, आगल दूध चूलो चरी।
आईजी एणे ठामे बेसे, बेसे सखियो सहु घेरी।।११।।

आँगन में रेत झलक रही है। सामने चूल्हे पर दूध गरम हो रहा है। यहाँ पर माता यशोदा जी बैठी हुई दिखायी दे रही हैं। सखियाँ उन्हें घेरकर बैठी हुई हैं।

इहां मंदिर मोदी तेजपालनो, चरी चूला पास।
कोइक दिन आवी रहे, एनों मथुरा मांहें वास।।१२।।

तेजपाल मोदी का कक्ष चार मुख वाले चूल्हे के पास है। यद्यपि उनका मूल निवास मथुरा में है, किन्तु वे कभी-कभी यहाँ आकर कुछ दिन रहा करते हैं।

सरूप दस इहां आरोगे, पाक साक अनेक।
भागवंतीबाई भली भांते, रसोई करे विवेक।।१३।।

नन्द जी के घर में कुल दस सदस्य भोजन करते हैं। अनेक प्रकार की सब्जियाँ तथा पकवान आदि भोजन के लिये बनाये जाते हैं। भाग्यवन्ती बाई बहुत ही विवेकपूर्वक सुन्दर ढंग से भोजन बनाती हैं।

लाडलो नंद जसोमती, रोहिणी बलभद्र बाल।
पालक पुत्र कल्याण जी, तेहेनो ते पुत्र गोपाल।।१४।।

इस परिवार में श्री कृष्ण जी, नन्द जी, यशोदा जी, रोहिणी, उनके पुत्र बलदेव जी, पालक पुत्र कल्याण जी, तथा उनके पुत्र गोपाल जी रहते हैं।

बेहेनो बंने जीवा रूपा, भेलियां रहे मोहोलान।

अने बाई भागवंती, नारी घर कल्यान।।१५।।

श्री कृष्ण जी की दो बहनें जीवा और रूपा भी इस गृह में रहती हैं। इसके अतिरिक्त कल्याण जी की पत्नी भाग्यवन्ती बाई भी यहीं पर रहा करती हैं।

पुरो एक वृखभाननो, उत्तर दिस लगतो।

पासे भाई भेलो लखमण, पुरो पूरण वसतो।।१६।।

नन्द जी के पुरे की उत्तर दिशा में वृषभान जी का पुरा है, जो अति सुन्दर ढंग से बसा हुआ है। पास में ही उनके भाई लक्ष्मण का घना बसा हुआ सुन्दर पुरा है।

सरूप साते भली भांते, आरोगे अंन पाक।

कल्यानबाई रसोई करे, विध विध वघारे साक।।१७।।

इस परिवार में सात सदस्य रहते हैं। कल्याण बाई अनेक प्रकार की सब्जियाँ तथा अन्न आदि के विभिन्न प्रकार के बहुत से पकवान बनाती हैं, जिसे सभी लोग रुचिपूर्वक ग्रहण करते हैं।

राधाबाई पिता वृखभानजी, प्रभावती बाई मात।

नान्हों कृष्ण कल्याणजी, तेथी मोटो सिदामो भ्रात।।१८।।

इस परिवार में राधिका जी, उनके पिता वृषभान जी, माता प्रभावती जी, छोटा भाई कृष्ण, कल्याण जी, तथा बड़े भाई श्रीदामा जी रहते हैं।

नार सिदामा तणी, तेहनी नणद राधाबाई।

जाणो सगाई स्यामनी, अंग धरे ते अति बड़ाई।।१९।।

श्रीदामा जी की पत्नी अपनी ननद राधा जी की सगाई श्री कृष्ण जी से हुई जानकर अपने हृदय में उनके लिये बहुत अधिक सम्मान का भाव रखती हैं।

मंदिर छे आगल मांडवे, चूले चढे दूध माट।

राधाबाई खोले प्रभावती, लई बेसे ऊपर खाट।।२०।।

वृषभान जी के निवास में आँगन के आगे छः कक्ष हैं। उनके गृह में मटकों में दूध उबाला जा रहा है। प्रभावती जी अपनी पुत्री राधिका जी को गोद में लेकर खाट के ऊपर बैठी हुई हैं।

राधाबाईनो विवाह कीधूं, पण परण्या नथी प्राणनाथ।
मूल सनमंधे एक अंगे, विलसे वल्लभ साथ।।२१।।

यद्यपि राधा जी की मँगनी श्री कृष्ण जी के साथ हो गयी थी, किन्तु उनका विवाह नहीं हुआ था। परमधाम के मूल सम्बन्ध से श्यामा जी और श्री राज जी एक ही अंग हैं। उसी सम्बन्ध से वे अपने प्रियतम के साथ प्रेम की आनन्दमयी लीला करती हैं।

घुरसे गोरस हरखे हेतें, घर घर प्रते थाए।
आंगणे वेलूं उजली, वालो विराजे सहु मांहें।।२२।।

व्रज में प्रत्येक घर में बहुत भाव से दही को मथा जा रहा है। सबके घर में आँगन की उजली रेत में श्री कृष्ण जी प्रेमपूर्वक खेला करते हैं।

पुरा सघले वचें चौरा, मांहें मेलावा थाय।

चारे पोहोर गोठ घूघरी, रामत करतां जाय।।२३।।

सभी पुरों के बीच में चबूतरे बने हैं, जिन पर लोग बैठा करते हैं। प्रातः से सन्ध्या काल तक का समय प्रीतिभोज के रूप में गेहूँ की खीर खाते हुए खेलते–खेलते बीत जाता है।

तेजपाल मोदी वलोट पूरे, वृजमां मोटे ठाम।

वस्त वसाणूं सहु लिए, घृत दिए आखू गाम।।२४।।

तेजपाल मोदी व्रज में बड़े–बड़े घरों में वस्तुओं का लेन–देन करते हैं। गाँव के सभी लोग उन्हें घी देते हैं और वे उसके बदले तरह–तरह की सभी आवश्यक वस्तुएँ देते हैं।

घोलिया इहां घोल करवा, आवे वृजमां जेह।

वस्त वसाणूं लिए दिए, जई रहे मथुरा तेह।।२५।।

मथुरा के व्यापारी व्रज में व्यापार करने के लिये आया करते हैं। वे आवश्यक वस्तुएँ ले-देकर पुनः मथुरा चले जाते हैं।

गोवाला संग रमे वालो, सेर पाणी वाट।

विनोद हांस अमें आवूं जावूं, जल भरवा एणे घाट।।२६।।

श्री कृष्ण जी ग्वाल बालकों के साथ जल लाने के मार्ग में खेला करते हैं। जब हम सखियाँ जल भरने के लिये वहाँ आती-जाती हैं, तो वे हमारे साथ विनोदपूर्ण हँसी करते हैं।

विलास वृजमां वालाजीसूं, वरते छे एह वात।

वचन अटपटा वेधे सहुने, अहनिस एहज तात।।२७।।

व्रज में इस प्रकार प्रियतम के साथ दिन–रात प्रेम की आनन्दमयी लीला होती है। उनके प्रेम–भरे अटपटे वचन सबके हृदय को बींध देते हैं।

रमें प्रेमें प्रीते भीनो, पुरा सघला मांहें।

रमे खिण जेसूं तेहेने बीजो, सूझे नहीं कोई क्यांहें।।२८।।

श्री कृष्ण जी व्रज मण्डल के सभी पुरों में अत्यन्त प्रेम में भरकर मनोहर क्रीड़ायें करते हैं। वे एक क्षण भी जिसके साथ खेल लेते हैं, उसे श्री कृष्ण जी के अतिरिक्त अन्य कुछ भी अच्छा नहीं लगता अर्थात् किसी का भी बोध नहीं रहता (मात्र श्री कृष्ण जी में ही खोया रहता है)।

रामत रंगे अमें वालाजी संगे, रमूं जातां पाणी।

आठो पोहोर अटकी अंगे, एह छब एहज वाणी।।२९।।

इस प्रकार, जल भरने के लिये जाते समय हम श्री कृष्ण जी के साथ आनन्दमयी क्रीड़ायें करती हैं। प्रियतम की मोहिनी छवि तथा मधुर वाणी आठों प्रहर (दिन–रात) हमारे हृदय में बसी रहती है।

घर घर आनंद ओछव, उछरंग अंग न माय।

विनोद हांस वालाजी संगे, अहनिस करतां जाय।।३०।।

व्रज मण्डल के प्रत्येक घर में आनन्दमयी उत्सव मनाये जा रहे हैं। सबके हृदय में अपार उमंग भरा हुआ है। हम सभी सखियाँ प्रियतम के साथ दिन–रात विनोदपूर्ण हँसी करती हैं।

बालक सुंदर बोले मीठूं, केडे करी घेर आणूं।

खिणमां जोवन प्रेमें पूरो, सेजडिए सुख माणूं।।३१।।

श्री कृष्ण जी का स्वरूप अति सुन्दर बालक का है। वे बहुत ही मधुर बोलते हैं। हम उन्हें गोद में चढ़ाकर अपने घर लाती हैं। वे क्षण भर में ही किशोर रूप धारण कर प्रेम-भरी शैय्या का सुख देते हैं।

वाछरडा लई वन पधारे, आठमें दसमें दिन।

कहियक गोवरधन फरतां, मांहें रमें ते वारे वन।।३२।।

श्री कृष्ण जी बछड़ों को लेकर आठवें-दसवें दिन वन में जाते हैं। कभी वे गोवर्धन पर्वत पर जाते हैं और कभी १२ वनों में तरह-तरह की क्रीड़ायें करते हैं।

अखंड लीला रमूं अहनिस, अमें सखियों वालाजीने संग।
पूरे मनोरथ अमतणां, ए सदा नवले रंग।।३३।।

इस प्रकार, यह प्रेममयी लीला निरन्तर चलती रहती है। हम अपने प्राणवल्लभ के साथ अनेक प्रकार की क्रीड़ायें करती हैं। प्रियतम हमारी प्रत्येक इच्छा को पूर्ण करते हैं। इस मनोहर लीला में सदा ही नये–नये आनन्द प्रकट होते हैं।

श्री राज पधारया पछी, वृजवधु मथुरा न गई।
कुमारिका संग रामत मिसे, दाणलीला एम थई।।३४।।

व्रज मण्डल में श्री राज जी के आने के पश्चात्, वहाँ इतना अधिक ऐश्वर्य हो गया कि गोपियों को दही बेचने के लिये कभी भी मथुरा जाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। कुमारिका सखियाँ भी गोपियों के साथ लीला में

सम्मिलित होने लगीं। इसके पश्चात् दान लीला प्रारम्भ होती है।

कुमारिका रमें रामत, अभ्यास चीलो कुल तणो।
कुलडा मांहें दूध दधी, रमे वन रंग रस घणो।।३५।।

अपने कुल की दूध–दही बेचने की रीति के अनुसार कुमारिकायें भी उसका अभ्यास करती हैं और गोपियों की तरह खेला करती हैं। वे अपने छोटे–छोटे बर्तनों में दूध–दही भरकर वन में अपार प्रेम एवं आनन्द से क्रीड़ा करती हैं।

वृजवधु मांहें रमवा, संग केटलीक जाय।
वालोजी इहां दाण मिसे, मारग आडो थाय।।३६।।

कुछ कुमारिकायें गोपियों के साथ वन में भी खेलने के

लिये जाया करती हैं। मार्ग में श्री कृष्ण जी खड़े हो जाते हैं तथा दान (कर) के रूप में दूध, दही, या मक्खन लेने के लिये अपनी लाठी अड़ाकर मार्ग को रोक देते हैं।

दूध दधी माखण ल्यावुं, अमें वालाजीने काज।
ते दधी झूंटी अमतणो, दिए गोवालाने राज।।३७।।

सत्य तो यह है कि हम अपने धाम धनी को खिलाने के लिये ही दूध, दही, तथा मक्खन लाया करती हैं। प्रियतम हमारी दही छीन लिया करते हैं और उसे ग्वाल बालकों में बाँट दिया करते थे।

गोवाला नासी जाय अलगां, अमें वलगी राखूं वालो पास।
पछे एकांते अमें वालाजी संगे, करूं वनमां विलास।।३८।।

श्री कृष्ण जी के बाल सखा (ग्वाल बाल) दही लेकर

भाग जाते हैं और हम प्रियतम को पकड़कर उनसे लिपट जाती हैं। इसके पश्चात् हम सभी सखियाँ वन में अपने धाम धनी के साथ प्रेम की आनन्दमयी लीलायें करती हैं।

त्यारे कुमारिका अम संग रेहेती, अमे वाला संगे रमती।
कुमारिकाओ ने प्रेम उतपन, मूल सनमंध इहां थकी।।३९।।

यद्यपि कुमारिका सखियाँ वन में हमारे साथ अवश्य रहती हैं, किन्तु प्रियतम लीला मात्र हमारे ही साथ करते हैं। उस प्रेम–भरी लीला को देखकर उनके मन में भी धनी के साथ प्रेममयी लीला में भाग लेने की इच्छा होती है।

अखंड लीला अहनिस, नित नित नवले रंग।
एणी जोतें सहुए द्रढ थयूं, सखियों वालाजी ने संग।।४०।।

बेहद में अखण्ड होने वाली व्रज की यह अखण्ड लीला बहुत ही मनमोहक है, जिसमें नित्य ही नयी–नयी आनन्दमयी लीलाओं के रस की वर्षा होती रहती है। तारतम ज्ञान की ज्योति ने इस रहस्य को उजागर कर हमें दृढ़ कर दिया है कि व्रज मण्डल में अपने धाम धनी के साथ हमने किस प्रकार प्रेम तथा आनन्द की लीला की थी।

नंद जसोदा गोवाल गोपी, धेन वछ जमुना वन।
पसु पंखी थावर जंगम, नित नित लीला नौतन।।४१।।

यह अखण्ड व्रज लीला नित्य नवीन है। इसमें संलग्न नन्द, यशोदा, ग्वाल–बाल, गोपियाँ, गायें, बछड़े, यमुना

जी, वन, स्थावर, और जंगम सभी पशु–पक्षी पल–पल प्रेम एवं आनन्द का रस लेते हैं।

पुरे सघले रमूं अमें, अजवालिए लई ढोल।
वालोजी इहां विनोद करे, ते कह्या न जाए बोल।।४२।।

जब शुक्ल पक्ष की रातें आती हैं, तो हम सभी सखियाँ ढोल बजाते हुए सभी पुरों में तरह–तरह की क्रीड़ायें किया करती हैं। इस समय धाम धनी हमारे साथ इतना मधुर हास–परिहास करते हैं कि उसे शब्दों में व्यक्त कर पाना किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं है।

उलसे गोकुल गाम आखू, हरख हेत अपार।
धन धान वस्तर भूखण, द्रव्य अखूट भंडार।।४३।।

सम्पूर्ण व्रज मण्डल में अत्यधिक उल्लास भरा हुआ है।

सबके हृदय में एक-दूसरे के लिये अपार प्रेम और प्रसन्नता है। सभी के घरों में धन-धान्य, वस्त्रों, और आभूषणों के अखण्ड भण्डार भरे पड़े हैं।

विवाह जनम नित प्रते, आखे गाम अनेक होय।

थोडुंक कारज कांइक थाय, तिहां तेडावे सहु कोय।।४४।।

सभी पुरों में प्रतिदिन किसी न किसी के यहाँ जन्मोत्सव या विवाहोत्सव मनाया जाता है। जो भी अपने यहाँ कोई उत्सव आदि का आयोजन करता है, तो वह भोजन करने के लिये सभी को आमन्त्रित करता है।

अनेक बाजंत्र नाटारंभ, धन खरचे अहीर उमंग।

साथ सहु सिणगार करी, अमें आवुं ते अति उछरंग।।४५।।

उत्सवों में यादव लोग उमंग में भरकर बहुत अधिक धन

खर्च करते हैं तथा अनेक प्रकार के वाद्य यन्त्रों को बजाकर तरह–तरह की नाट्य लीलायें करते हैं। इन कार्यक्रमों में हम सब सखियाँ भी बहुत उमंग में अपना श्रृंगार करके आती हैं।

वलगे वालो विनोदे अमसूं, देखतां सहु जन।
पण विचारे नहीं कोई वांकू, सहु कहे एह निसन।।४६।।

प्रियतम श्री कृष्ण जी सबके सामने ही हमसे विनोदपूर्वक लिपट जाते हैं, किन्तु उनकी इस लीला पर किसी के भी मन में बुरे विचार नहीं आते हैं। सभी यही कहते हैं कि यह तो निर्विकार बालक है।

वात एहेनी जाणूं अमें, कां वली जाणे अमारी एह।
मांहेली वात न समझे बीजो, वालाजीनो सनेह।।४७।।

प्रियतम के हृदय में विद्यमान हमारे प्रति प्रेम की चाहत को या तो हम सखियाँ जानती हैं या हमारी प्रेम-भरी चाहत को वे जानते हैं। हमारे तथा धाम धनी के बीच के प्रेम को अन्य कोई भी नहीं जान सकता।

ए थाय सहु अम कारणे, वालो पूरे मनोरथ मन।
ए समे नी हूं सी कहूं, साथ सहु धंन धंन।।४८।।

हमारे मन में उत्पन्न होने वाली प्रेम की इच्छा को पूर्ण करने के लिये धाम धनी हमारे साथ इस प्रकार की लीला करते हैं। इस समय की लीला के अलौकिक आनन्द का वर्णन मैं कैसे करूँ। इस लीला में भाग लेने वाली हम सब ब्रह्मसृष्टियाँ धन्य-धन्य हैं।

गोकुल आखो कीधूं गेहेलूं, अने वालो तो वचिखिण।
जिहां मलूं तिहां एहज वातो, हांस विनोद रमण।।४९।।

प्रियतम विलक्षण प्रेम के स्वरूप हैं। उन्होंने सम्पूर्ण व्रज मण्डल को अपने प्रेम से पागल (दीवाना) बना रखा है। जहाँ भी कोई किसी से मिलता है, वह केवल श्री कृष्ण जी के प्रेम-भरे हास-परिहास एवं मनोरम लीलाओं की ही चर्चा करता है।

हवे ए लीला कहूं केटली, अलेखे अति सुख।
वरस अग्यारे वासनाओंसों, प्रेमें रम्या सनमुख।।५०।।

अब मैं इस अलौकिक ब्रह्मलीला का कितना वर्णन करूँ। इसमें इतना आनन्द है कि उसका वर्णन ही नहीं किया जा सकता। धाम धनी ने कालमाया के व्रज मण्डल में गोपी स्वरूपा अपनी सखियों के साथ जो प्रेममयी

लीला की थी, वही व्रज लीला के रूप में बेहद मण्डल (सबलिक के कारण) में अखण्ड हो गयी है।

एक दिन गौ चारवा, वालो पोहोंता ते वृंदावन।

गोवाला गौ लई वल्या, पछे जोगमाया उतपन।।५१।।

एक दिन गायें चराने के लिए प्रियतम वृन्दावन पहुँचे। गायों को लेकर ग्वाल बाल गोकुल लौट आये। इसके पश्चात् धाम धनी ने बेहद मण्डल में जाकर आनन्द योगमाया द्वारा नित्य वृन्दावन की रचना करायी।

कालमायामां रामत, एटला लगे प्रमाण।

ब्रह्मांडनो कल्पांत करी, अखंड कीधो निरवाण।।५२।।

इस प्रकार, कालमाया के ब्रह्माण्ड में ११ वर्षों तक व्रज लीला हुई। इसके बाद धाम धनी के आदेश से इस

ब्रह्माण्ड का प्रलय करके व्रज लीला को योगमाया के ब्रह्माण्ड में अखण्ड कर दिया गया।

सदा लीला जे वृजनी, आ विध कही तेह तणी।

हवे रासनो प्रकास कहूं, ए सोभा अति घणी।।५३।।

इस प्रकरण में मैंने अखण्ड रहने वाली व्रज लीला की वास्तविकता का वर्णन किया है। अब मैं रास लीला का वर्णन करने जा रही हूँ, जिसकी शोभा बहुत अधिक है।

वली जोत झाली नव रहे, बीजो वेधियो आकास।

ततखिण लीधो त्रीजो ब्रह्मांड, जिहां अखंड रजनी रास।।५४।।

अब तारतम ज्ञान की ज्योति पकड़ी नहीं जा सकती। इस ज्ञान की ज्योति से अखण्ड व्रज के ब्रह्माण्ड (दूसरे आकाश) को हमने देखा। उसी क्षण हमने रास के

ब्रह्माण्ड (तीसरे आकाश) में प्रवेश किया, जहाँ अभी भी महारास की लीला हो रही है।

जिनस जुगत कहूं केटली, अलेखे सुख अखंड।
जोगमायाए नवो निपायो, कोई सुख सरूपी ब्रह्मांड।।५५।।

नित्य वृन्दावन की संरचना की शोभा का मैं कितना वर्णन करूँ। यहाँ के सुख शब्दातीत और अखण्ड हैं। केवल ब्रह्म की अर्धांगिनी आनन्द योगमाया ने नित्य वृन्दावन की रचना की, जो मात्र सुख का ही ब्रह्माण्ड है।

प्रकरण ।।८।। चौपाई ।।२९५।।

प्रकरण जोगमायानूं

योगमाया का प्रकरण

इस प्रकरण में योगमाया के ब्रह्माण्ड में नित्य वृन्दावन की शोभा एवं लीला का संक्षिप्त वर्णन किया है।

मारा सुंदरसाथ आधार, जीवन सखी वाणी ते एह विचारोजी।
जागनीसूं जगवुं तमने, ते साथजी कां न संभारोजी।।१।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं– मेरे जीवन के आधार सुन्दरसाथ जी! आप प्रियतम की वाणी का विचार कीजिए। मैं जाग्रत बुद्धि के ज्ञान से आपको जगा रही हूँ। हे साथ जी! आप जागनी के सम्बन्ध में धनी द्वारा कहे गये वचनों को याद क्यों नहीं करते हैं?

वाणी मांहें न आवे केमे, जोगमायानी विधजी।

तोहे वचन कहूं तमने, लीला अमारी निधजी।।२।।

यद्यपि इस नश्वर जगत के शब्दों से किसी भी प्रकार से योगमाया के ब्रह्माण्ड (नित्य वृन्दावन) की शोभा का वर्णन नहीं हो सकता, फिर भी रास लीला हमारी निधि है, इसलिये उसके सम्बन्ध में मैं आपसे कुछ बातें कहती हूँ।

अमें जोऊं वृंदावन इहां थकी, रमूं वालाजी साथ जी।

करूं ते रामत नित नवी, वन मांहें विलास जी।।३।।

मेरी यही कामना है कि मैं यहीं बैठे-बैठे चितवनि द्वारा नित्य वृन्दावन की लीला को साक्षात् देखूँ तथा भावात्मक रूप से अपने प्रियतम के साथ रास की रामतें खेलूँ। मैं नित्य वृन्दावन में सदा ही नई-नई रामतें

खेलकर आनन्द का रसपान करूँ।

जोगमायानी क्यांहें न दीसे, अम विना ओलखाणजी।
वासना पांचे अछरनी, भले कहावे आप सुजाणजी।।४।।

अक्षर ब्रह्म की पाँचों सुरतायें भले ही महान ज्ञानी क्यों न कहलायें, किन्तु हमारे अतिरिक्त योगमाया के ब्रह्माण्ड की वास्तविक पहचान अन्य किसी के भी पास नहीं है।

ए मायाओ अमतणी, ऐहेना अमकने विचारजी।
बीजा सहुए एहेना उपायल, ए अमारी अग्याकारजी।।५।।

यह योगमाया हमारी है। इसका वास्तविक ज्ञान भी हमारे ही पास है। अन्य सभी (कालमाया के) इसके द्वारा ही उत्पन्न किये गये हैं, जबकि यह हमारे आदेश पर चलने वाली है।

पेहेले फेरे रास रामतडी, जे कीधी वृन्दावनजी।
आनंदकारी जोगमाया, अविनासी उतपनजी।।६।।

पहली बार हमने व्रज से नित्य वृन्दावन में जाकर महारास की लीला की थी। उस समय केवल ब्रह्म की आह्लादिनी शक्ति आनन्द योगमाया ने ही नित्य वृन्दावन को प्रकट किया था।

जोगमायानी जुगत एहेवी, एक रस एक रंगजी।
एक संगे रेहेवुं सदा, अंगना एकै अंगजी।।७।।

योगमाया के ब्रह्माण्ड का स्वरूप ऐसा है कि वह एकरस है। एक समान आनन्द है। प्रिया-प्रियतम का एक ही स्वरूप है तथा सर्वदा एकसाथ ही रहने वाले हैं।

आतम सदीवे एक छे, वासना एकै अंग जी।
मूल आवेस जोगमाया पर, सुख अखंडना रंगजी।।८।।

परमधाम में हम सभी आत्मायें एक ही अक्षरातीत की अँगरूपा हैं और अनादि काल से एक समान हैं। इसी प्रकार, योगमाया में रास के लिये हमारे द्वारा धारण किये गये सभी तन अन्दर–बाहर एक समान हैं। धाम धनी के मूल आवेश स्वरूप ने ही योगमाया के ब्रह्माण्ड में हमारे साथ लीला की थी, जिसका प्रेम और आनन्द आज भी अखण्ड है।

एक अंगे रंगे संगे, तो अंतरध्यान थाय केमजी।
ए सब्द मां छे आंकडी, ते करी दऊं सर्वे गमजी।।९।।

प्रश्न यह होता है कि जब हम सभी एक ही अक्षरातीत की अँगनायें हैं और उनके प्रेम तथा आनन्द में सदा ही

साथ–साथ रहने वाली हैं, तो रास में वियोग (अन्तर्धान) क्यों हुआ? इस अन्तर्धान शब्द में गहरा रहस्य छिपा हुआ है, जिसे मैं सबके लिये प्रकट कर देती हूँ।

आंकडी अंतरध्याननी, साथ तमने कहूं सनंधजी।
अम विना ए कोण जाणे, तारतमना बंधजी।।१०।।

हे साथ जी! अन्तर्धान लीला के रहस्य की वास्तविकता को मैं तारतम ज्ञान के प्रकाश में आपको बता रही हूँ। भला हमारे अतिरिक्त, तारतम ज्ञान के प्रकाश में, इन रहस्यों को और कौन जानता है।

आवेस लइने जगवया, त्यारे पाम्या अंतरध्यानजी।
विलास विरह चित चोकस करवा, संभारवा घर श्री धामजी।।११।।

मूल स्वरूप श्री राज जी ने श्री कृष्ण जी के तन से जैसे ही अपना आवेश खींचा, त्यों ही उनका तन सखियों के लिये अदृश्य हो गया। श्री राज जी ने अक्षर ब्रह्म तथा सखियों को विलास एवं विरह की लीला, उनके चित्त को इस सम्बन्ध में सावधान (चौकस) करने के लिये, दिखायी जिससे अक्षर ब्रह्म यह जान सकें कि उन्होंने परमधाम की जो लीला देखनी चाही थी, वह परमधाम में नहीं बल्कि योगमाया में हो रही है। सखियों को विरह द्वारा दुःख की लीला की याद दिलाकर झीलना के बाद परमधाम की याद दिलानी थी।

जुगत जोगमाया तणी, बीजो न जाणे कोयजी।

बीजो कोई तो जाणे, जो अम विना कोई होयजी।।१२।।

योगमाया के अन्दर नित्य वृन्दावन की संरचना को

हमारे अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं जान सकता है। हमारे अतिरिक्त रास में और कोई था ही नहीं, अतः अन्य कोई उसके विषय में भला कैसे जान सकता है।

जोगमायाए जागृत थाय, जल भोम वाय अगिनजी।
पसु पंखी थावर जंगम, तत्व पांचे चेतनजी।।१३।।

योगमाया का वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जाग्रत है। वहाँ के पाँचों तत्व (जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, आकाश), चर-अचर सभी प्राणी, और अन्य पशु-पक्षी चेतन हैं।

सुतेज ससि वन पसु पंखी, तत्व पांचे सुतेजजी।
सुतेज सर्वे जोगवाई, सुतेज रेजा रेजजी।।१४।।

नित्य वृन्दावन का चन्द्रमा नूरी तेज से परिपूर्ण है। सम्पूर्ण वन, पशु-पक्षी, तथा पाँचों तत्व तेज से भरपूर

हैं। वहाँ की सम्पूर्ण शोभा ही अलौकिक प्रकाश से युक्त है। एक–एक कण से तेज छिटक रहा है।

हेम जवेरना वन कहूं, तो ए पण खोटी वस्तजी।
सत वस्त ने समान नहीं, न केहेवाय मुख न हस्तजी।।१५।।

यदि मैं नित्य वृन्दावन को सोने, हीरे, मोतियों आदि जवाहरातों का वन कहूँ, तो यह भी मिथ्या उपमा कही जायेगी। उस अखण्ड मण्डल की शोभा को न तो इस मुख से कहा जा सकता है और न लेखनी से व्यक्त ही किया जा सकता है।

एक पत्रनी वरणव सोभा, आंणी जिभ्याए कही न जायजी।
कै कोट ससि जो सूर कहूं, तो एक पत्र हेठे ढंकाय जी।।१६।।

नित्य वृन्दावन के एक पत्ते की शोभा का वर्णन भी इस

जिह्वा से हो पाना सम्भव नहीं है। यदि मैं एक पत्ते के तेज की उपमा में करोड़ों सूर्यों और चन्द्रमा को रखूँ, तो वे भी उसके सामने निस्तेज हो जाते हैं (ढप या छिप जाते हैं)।

ए भोमनी रेत रंचकने, समान नहीं सूर कोटजी।
द्रष्टे कांई आवे नहीं, एक रंचक केरी ओटजी।।१७।।

नित्य वृन्दावन की थोड़ी सी रेत के तेज के समक्ष कालमाया के करोड़ों सूर्य भी निस्तेज (फीके) पड़ जाते हैं। वहाँ की रेत के एक कण के सामने संसार का कोई सूर्य दिखायी भी नहीं पड़ेगा।

हवे ते भोमना वस्तर भूखण, वचने केम कहूं मुखजी।
मारा घरनी हसे ते जाणसे, अम घरतणां ए सुखजी।।१८।।

वहाँ के वस्त्रों एवं आभूषणों की शोभा का वर्णन मैं यहाँ के मुख से कैसे करूँ? जो मेरे घर परमधाम की आत्मा होगी, मात्र वह ही समझ सकेगी। नित्य वृन्दावन में परमधाम के प्रेम-भरे सुख की आभा है।

सुंदरता सिणगार सोभा, वचने न केहेवायजी।
तो सरूपना जे सुखनी वातों, लवो केम बोलायजी।।१९।।

रास के स्वरूपों (युगल स्वरूप एवं सखियों) की शोभा, सुन्दरता, एवं श्रृंगार का वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में इन स्वरूपों के सुख की बातों का अंश मात्र भी कैसे कहा जा सकता है।

भोमनी किरणो वननी किरणो, किरणा ससि प्रकासजी।
ते मांहें अमें रमूं प्रेमें, पिउसों रंग विलासजी।।२०।।

वहाँ की धरती से उठने वाली किरणों, वन की किरणों, एवं चन्द्रमा की किरणों के शीतल प्रकाश में हमने अपने प्रियतम के साथ अति प्रेमपूर्वक क्रीड़ा की और अपार आनन्द का रसपान किया।

ए रामत रास रमी करी, अमे आव्या सहु घर धामजी।
ब्रह्मांडनो कल्पांत करी, रूदे कीधो अखंड ठामजी।।२१।।

रास की रामतें खेलने के पश्चात् हम सभी परमधाम आ गये। केवल ब्रह्म की भूमिका में होने वाली इस लीला को सबलिक के महाकारण में अखण्ड कर दिया गया।

अमें अमारे धाम आव्या, अछर पोताने घेरजी।
अखंड रजनी रास रमाय, रामत एणी पेरजी।।२२।।

इस प्रकार अखण्ड रात्रि में महारास की लीला करने के

पश्चात् हम सभी अपने घर परमधाम आ गये और अक्षर ब्रह्म अपने अक्षरधाम आ गये।

वृज रास मांहें अमें रमूं, आंही पण अमें आव्याजी।
श्री धाम मधे बेठा अमें, जोऊं छूं आ मायाजी।।२३।।

व्रज–रास में सुरता से हमने लीला की और इस जागनी ब्रह्माण्ड में भी हम सुरता से आये हुए हैं। परमधाम में अपने मूल तन से हम धनी के सम्मुख बैठे हुए हैं और अपनी आत्मिक (सुरता की) दृष्टि से इस माया के खेल को देख रहे हैं।

वृज रास देखाडिया, रमया ते अनेक पेरजी।
विलास विरह बंने भोगवी, आव्या ते आपणे घेरजी।।२४।।

धाम धनी ने हमें व्रज और रास का खेल दिखाया,

जिसमें हम अनेक प्रकार से खेले। इन लीलाओं में हमने विलास के आनन्द एवं विरह के कष्ट दोनों का ही अनुभव किया और अपने धाम आ गये।

सुख दुख बंने जोइया, तोहे कांईक रह्यो संदेहजी।
ते माटे वली सत सरूपे, मंडल रचियो एहजी।।२५।।

इन लीलाओं में हमने सुख-दुःख दोनों ही देखा, फिर भी दुःख के सम्बन्ध में कुछ संशय बना रहा, इसलिये पुनः श्री राज जी के सत्स्वरूप ने इस कालमाया के ब्रह्माण्ड को बनाया।

ए रामत रची अम कारणे, अमे कारज एणे आव्याजी।
बंनेना मनोरथ पूरवा, अमें रचावी आ मायाजी।।२६।।

यह माया का खेल हमारे लिये बनाया गया और धाम

धनी मात्र हमारे लिये ही इस मायावी जगत में आये हैं। हमने अपनी और अक्षर ब्रह्म की इच्छा को पूर्ण करने के लिये धाम धनी से इस मायावी खेल को बनवाया है।

संसार रची सुपनना, देखाड्या मांहें सुपनजी।
ते जोऊं अमे अलगा रही, नहीं जोवावालो कोई अनजी।।२७।।

यह संसार स्वप्नमयी है। धाम धनी ने हमें स्वप्नावस्था में ही यह खेल भी दिखाया है। इसे देखने पर भी हम इससे अलग हैं क्योंकि हम अपने मूल तन से मूल मिलावा में ही बैठे हैं। हमारे (एवं अक्षर ब्रह्म के) अतिरिक्त इस खेल को इस प्रकार देखने वाला अन्य कोई है भी नहीं।

रामत साथने रूडी पेरे, देखाडी भली भांतजी।

तारतम बुधे प्रकासीने, पूरी ते मननी खांतजी।।२८।।

प्राणेश्वर अक्षरातीत ने हमें माया का यह खेल बहुत ही सुन्दर ढंग से भली भांति दिखाया है। जाग्रत बुद्धि एवं तारतम ज्ञान का प्रकाश करके, उन्होंने हमारे मन की सभी इच्छाओं को पूर्ण कर दिया है।

रामत अमें जे जोई, ते थिर थासे निरधारजी।

सहु मांहें सिरोमण, अखंड ए संसारजी।।२९।।

हमने यह जो मायावी जगत देखा है, वह निश्चित रूप से बेहद मण्डल में अखण्ड हो जायेगा। बेहद मण्डल में अखण्ड हो जाने से यह ब्रह्माण्ड अब तक के सभी ब्रह्माण्डों में सर्वश्रेष्ठ हो जायेगा।

भावार्थ– इस ब्रह्माण्ड की श्रेष्ठता का मूल कारण यह है

कि इसके अतिरिक्त आज तक कोई भी ब्रह्माण्ड अपने मूल रूप में बेहद में अखण्ड नहीं हो सका था। इस ब्रह्माण्ड में ब्रह्मलीला होने के कारण ही इसे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

भगवानजी आहीं आविया, जागवाने ततपरजी।
अमे जागसूं सहु एकठा, ज्यारे जासूं अमारे घरजी।।३०।।

अक्षर ब्रह्म भी इस खेल में आये हुए हैं। वे अपने मूल स्वरूप में जाग्रत होने के लिये तत्पर हैं। जब हमारी आत्मा (सुरता) परमधाम जायेगी, तभी हम (अक्षर ब्रह्म सहित) अपनी परात्म के तनों में एकसाथ जाग्रत होंगे।

प्रकरण ।।९।। चौपाई ।।३२५।।

दयानूं प्रकरण

दया का प्रकरण

इस प्रकरण में प्रियतम अक्षरातीत की प्रेम भरी दया (कृपा) का विवरण दिया गया है।

हो वालैया हवे ने हवे, दसो दिस तारी दया।

ए गुण तारा केम विसरे, मुझथी अखंड ब्रह्मांड थया।।१।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मेरे प्राणवल्लभ! अब तो दशो दिशाओं में मात्र आपकी ही कृपा का फैलाव दिखायी दे रहा है। आपने मेरे द्वारा इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अखण्ड मुक्ति दिलायी है। मैं आपके इस गुण (प्रेम-भरी कृपा) को कैसे भूल सकती हूँ।

हवे तो गली हूं दया मांहें, सागर सरूपी खीर।

दया सागर सकल पूरण, एक टीपू नहीं मांहें नीर।।२।।

अब मैं आपकी दया के अनन्त सागर में डूब गयी हूँ। आपकी दया का यह सागर इतना अथाह और दिव्य है कि इसमें मात्र दूध (एकत्व) ही दूध है। इसमें एक बूँद भी पानी की कल्पना नहीं की जा सकती।

दया मुकट सिर छत्र चमर, दया सिंघासन पाट।

दया सर्वे अंग पूरण, सहु दया तणों ए ठाट।।३।।

प्रियतम ने मेरे सिर पर अपनी अलौकिक दया का मुकुट रख दिया है और मुझे दया के सिंहासन पर बैठा भी दिया है। मेरे सिर के ऊपर प्रियतम की दया का छत्र जगमगा रहा है। मेरे दोनों ओर दया के चँवर ढुलाये जा रहे हैं। मेरे प्रत्येक अंग में प्रियतम की पूर्ण दया ही दृष्टिगोचर हो रही

है। इस प्रकार, श्री राज जी की दया ने इस जागनी ब्रह्माण्ड में मुझे सारी शोभा दी है।

हवे दया गुण हूं तो कहूं, जो अंतर कांई होय।
अंतर टाली एक कीधी, ते देखे साथ सहु कोय।।४।।

यदि मेरे और आपके मध्य किसी प्रकार का भेद होता, तो मैं आपकी दया के गुण का बखान करती। मैं आपकी अर्धांगिनी हूँ और आपने मुझे परमधाम के सम्बन्ध से इस मायावी संसार में भी अंगीकार किया और मुझे अपने जैसा ही बना लिया। अब सब सुन्दरसाथ मुझे उसी (अक्षरातीत के) स्वरूप में देखेगा।

पल पल आवे पसरती, न लाभे दयानों पार।
बीजूं ते सहु में मापियूं, आगल रही आवार।।५।।

प्राणेश्वर अक्षरातीत की दया की तो कोई सीमा ही नहीं है। वह पल–पल बढ़ती ही जा रही है। मैंने इस संसार की प्रत्येक वस्तु की माप कर ली है, किन्तु इस जागनी लीला में वह मेरी मापने की शक्ति से भी आगे चल रही है, अर्थात् मैं उसका माप करने में पूर्णतया असमर्थ हूँ।

आटला ते दिन अमें घर मधे, लीला ते राखी गोप।
हवे बुध तांणे पोते घर भणी, तेणे प्रगट थाय सत जोत।।६।।

आज दिन तक हमने परमधाम की लीला को संसार से छिपाये रखा था। अब जाग्रत बुद्धि का ज्ञान सबको परमधाम की ओर खींच रहा है, इसलिये अब उस अखण्ड लीला का ज्ञान संसार में प्रकट हो जायेगा।

सब्द कोई कोई सत उठे, तेणे केम करूं हूं लोप।

गोप सर्वे सत थयूं, असत थयूं उद्योत।।७।।

कभी–कभी किसी महापुरुष के मुख से अखण्ड धाम के सम्बन्ध में भी कुछ कह दिया जाता है, तो मैं उसका लोप कैसे कर सकती हूँ? आज तो स्थिति यह है कि अखण्ड ज्ञान छिप गया है और मिथ्या ज्ञान (साकार – निराकार एवं बहुदेववाद) का प्रचलन हो गया है।

हवे असतने अलगो करूं, केम थावा दऊं सत लोप।

सत असत भेला थया, तेमां प्रकासूं सत जोत।।८।।

अब मैं तारतम ज्ञान द्वारा असत्य (भ्रान्तित्व वाले ज्ञान) को अलग कर देती हूँ, जिससे सत्य का लोप न होने पाये। स्वप्न की बुद्धि के कारण सत्य और असत्य मिल गये हैं। इसलिये असत्य को हटाकर मैं केवल सत्य

को ही प्रकाशित करूँगी।

भावार्थ– उपरोक्त चौपाई में सत्य का तात्पर्य परब्रह्म के धाम, स्वरूप, एवं लीला के ज्ञान से है, तथा असत्य का तात्पर्य देवी–देवताओं या साकार–निराकार को ही परब्रह्म का स्वरूप मानने से है।

असत पण करवुं अखंड, करी सतनो प्रकास।

सनंध सतनी समझावी, अंधेर नो करूं नास।।९।।

किन्तु मुझे तो शाश्वत सत्य का प्रकाश करके इस मिथ्या जगत को अखण्ड मुक्ति देनी है। इसलिये अब मैं सत्य का ज्ञान देकर अज्ञानता का नाश करती हूँ।

संसा ते सहु संघारिया, असत भागी अंधेर।

निज बुध उठी बेठी थई, भाग्यो ते अवलो फेर।।१०।।

तारतम ज्ञान के प्रकाश ने सम्पूर्ण संशयों का विनाश कर दिया है, जिससे अज्ञानता का अन्धकार समाप्त हो गया है। निजबुद्धि के ज्ञान के अवतरित होने से जन्म–मरण का उलटा चक्र भी समाप्त हो गया है।

हवे फेर सहु सवलो फरे, सहुने सत आव्यूं द्रष्ट।
एणे प्रकासे सहु प्रगट कीधूं, जाणी सुपन केरी सृष्ट।।११।।

अब सभी सुन्दरसाथ को सत्य की पहचान हो गयी है, जिससे वे परमधाम के मार्ग पर चलने लगे हैं। तारतम ज्ञान ने परमधाम की सारी निधि प्रकट कर दी है, जिससे सभी इस संसार को आध्यात्मिक दृष्टि से स्वप्न के समान मिथ्या मानने लगे हैं।

रामत जोई काल मायानी, कालमाया ने आसरी।
देखी सुख आ जागनी, जासे ते सर्वे विसरी।।१२।।

ब्रह्मसृष्टियों ने कालमाया के नश्वर तनों का आधार लेकर इस ब्रह्माण्ड का खेल देखा है। तारतम वाणी के प्रकाश में आत्म–जाग्रति का सुख भी देखा है, जिससे पहले की सभी लीलायें (व्रज–रास) भूल सी गयी हैं।

आवेस मूं कने धणी तणों, तेणे करूं भेलो साथ।
साथ मली सहु एकठो, विनोद थासे विलास।।१३।।

मेरे धाम–हृदय में प्रियतम अपने आवेश स्वरूप से विराजमान हैं। उनके दिये हुए ज्ञान एवं प्रेम के आवेश से मैं सब सुन्दरसाथ को एकत्रित करूँगी। जब सब सुन्दरसाथ एकत्रित हो जायेंगे, तो उस समय बहुत अधिक प्रसन्नता से भरपूर आनन्दमयी लीला होगी।

विलास करी विध विधना, त्यारे थासे हरख अपार।
रामत करसूं आनंद मां, आवसे सकुंडल सकुमार।।१४।।

उस समय तरह–तरह की आनन्दमयी लीलायें होंगी और सबके हृदय में अपार आनन्द छाया रहेगा। उस लीला में, सुन्दरसाथ के समूह में शाकुण्डल एवं शाकुमार भी होंगी और सभी आपस में एक–दूसरे के प्रति हास–परिहास के साथ जागनी लीला के आनन्द में मग्न रहेंगे।

त्यारे साथ सहु आवी रेहेसे, रामत थासे रंग।
त्यारे प्रगट थासूं पाधरा, पछे उलटसे ब्रह्मांड।।१५।।

जब धाम धनी के चरणों में सभी सुन्दरसाथ एकत्रित हो जायेंगे, तब आनन्द से भरपूर जागनी लीला होगी। इसके पश्चात् ब्रह्मात्माओं की जागनी लीला की बात संसार में उजागर हो जायेगी और ब्रह्माण्ड का लय हो जायेगा।

मारा आवेस मांहेंथी भाग दऊं, साथने सारी पेर।
मनना मनोरथ पूरा करी, हरखे ते जगवुं घेर।।१६।।

मेरे पास धाम धनी का दिया हुआ ज्ञान एवं प्रेम का जो आवेश है, उसे मैं सुन्दरसाथ में बाँट दूँगी। इससे उनके मन की इच्छायें (आध्यात्मिक) पूर्ण हो जायेंगी और वे प्रसन्नतापूर्वक परमधाम में जाग्रत होंगे।

साथ न मूकूं अलगो, साथ मूने मूके केम।
कह्यूं मारूं साथ न लोपे, साथ कहे करूं हूं तेम।।१७।।

जब मैं सुन्दरसाथ को माया में अकेला नहीं छोड़ती, तो भला सुन्दरसाथ मुझे कैसे छोड़ सकता है। इसी प्रकार, जब सुन्दरसाथ मेरा कहा हुआ नहीं टालता, तो मैं भी वही करूँगी जो सुन्दरसाथ कहेंगे।

लेस छे कालमायानो, वासनाओ मांहें विकार।

दया द्रष्टे गाली रस करूं, मेली तारतमनो खार।।१८।।

सुन्दरसाथ में अभी मायावी विकारों का कुछ प्रभाव है। अब मैं अपने प्राणप्रियतम की कृपा दृष्टि से तारतम ज्ञान रूपी साबुन द्वारा उनके विकारों को समाप्त कर प्रेम–रस में डुबो (एकरस कर) दूँगी।

विकार काढूं विधोगते, करी दयानो विस्तार।

भली भांते भाजूं भरमना, जेम आल न आवे आकार।।१९।।

मैं धनी के प्रेम द्वारा उनकी दया का विस्तार करके सुन्दरसाथ के विकारों को अच्छी प्रकार से निकाल दूँगी। तारतम वाणी के प्रकाश में उनके सभी संशयों का अच्छी प्रकार से निराकरण कर दूँगी, जिससे जागनी की राह में चलने के लिये उनके शरीर में किसी भी प्रकार का

आलस्य या दुःख नहीं रहेगा।

सत वस्त दऊं साथने, कोई रची रूडो रंग।
मनना मनोरथ पूरा करी, सुख दऊं सर्वा अंग।।२०।।

तारतम ज्ञान के प्रसार से सम्बन्धित आनन्द देने वाले कार्यक्रमों का आयोजन करके मैं सुन्दरसाथ को परमधाम का ज्ञान दूँगी। उनकी मनचाही इच्छाओं को पूर्ण करके मैं उनके हृदय में सभी प्रकार का सुख दूँगी।

कालमायानों लेस निद्रा, अने निद्रा मूल विकार।
सर्वा अंगे सुध थाय, करी दऊं तेह विचार।।२१।।

सुन्दरसाथ में अभी कालमाया की अज्ञान रूपी नींद का थोड़ा सा प्रभाव है, जो विकारों का मूल कारण है। मैं तारतम वाणी द्वारा सुन्दरसाथ को इस प्रकार प्रबोधित

करूँगी कि उनके सभी अंगों (मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार) में प्रियतम की सुधि हो जाये।

जुगते जां न जगवुं तमने, तो जोगमाया केम थाय।
निरमल वासना कीधा विना, रासमां ते केम रमाय।।२२।।

हे साथ जी! यदि मैं आपको युक्तिपूर्वक न जगाऊँ, तो आपका जीव योगमाया में अखण्ड कैसे होगा? जब तक आपकी आत्मा निर्मल नहीं होती अर्थात् जीव के माध्यम से संसारी विषयों की लीला देखने में लगी रहेगी, तब तक वह जागनी रास का आनन्द कैसे ले सकती है?

क्रोधना कडका करूं, उडाडी अलगो नाखूं।
साथ माहें ना दऊं पेसवा, निद्रा ते आडी राखूं।।२३।।

हे साथ जी! मैं तारतम ज्ञान एवं प्रेम द्वारा आपके क्रोध

रूपी विकार के टुकड़े–टुकड़े करके नष्ट कर दूँगी, और आपसे पूरी तरह अलग कर दूँगी। उसे मैं आपके हृदय में बैठने नहीं दूँगी। इस प्रकार मैं आपको माया रूपी नींद से परे ही रखूँगी।

आमला अवला अति घणा, कालमायाना छे जोर।
बांक चूक विसमा टालीने, करी दऊं ते पाधरा दोर।।२४।।

कालमाया के तीव्र प्रभाव से सुन्दरसाथ के हृदय में माया का बहुत अधिक उलटा नशा विद्यमान है। अब मैं प्रियतम से विमुख कर देने वाली इनकी इस उल्टी प्रवृति को समाप्त कर प्रेम के सीधे मार्ग पर लगा देती हूँ।

गुण पख इंद्री अवला, करूं ते सवला साथ।
करी निरमल सुख दऊं नेहेचल, करूं ते सहुने सनाथ।।२५।।

तीनों गुणों, दोनों पक्षों, तथा इन्द्रियों का स्वभाव जीव को बलपूर्वक माया में खींचने का होता है। इन्हें सीधा करके सब सुन्दरसाथ को मैं धनी की राह पर चलाऊँगी। इस प्रकार, सबके हृदय को निर्मल करके मैं अखण्ड परमधाम का सुख दूँगी और सबको प्रियतम की प्रेम-भरी छत्रछाया का अनुभव कराऊँगी।

प्रकृत सर्वे पिंडनी, सवली करूं सनमुख।
दुख दावानल करूं अलगो, देखाडूं ते अखंड सुख।।२६।।

मैं तारतम वाणी द्वारा सुन्दरसाथ के शरीरों की सभी प्रकृतियों को मायावी विकारों से हटाकर प्रियतम के सम्मुख कर दूँगी। इस प्रकार, अखण्ड सुख का अनुभव कराकर दुःख रूपी दावाग्नि से मैं सुन्दरसाथ को मुक्त करूँगी।

मन चित बुध अहंमेव अवला, करूं जोरावर जेर।
हवे हारया सर्वे जीताडी, फेरवुं ते सवले फेर।।२७।।

अब तक सुन्दरसाथ के जीव के मन, चित, बुद्धि, तथा अहंकार उल्टे मार्ग पर चल रहे थे, अर्थात् माया की ओर भाग रहे थे। माया से हारने वाले इन अंगों को अब मैं धाम धनी के सीधे प्रेम मार्ग पर चला देती हूँ, जिससे ये सभी शक्तिशाली बन जायें और माया पर विजयश्री प्राप्त करें।

चोर टाली करूं वोलावो, सुख सीतल करूं संसार।
विध विधना सुख दऊं विगते, कांई रासतणा आवार।।२८।।

प्रियतम के प्रेम एवं आनन्द रूपी धन को चुराने वाले अन्तःकरण और इन्द्रिय रूपी चोरों को मैं तृष्णा सुखों से हटाकर प्रेम मार्ग पर चलाऊँगी। इस मार्ग के आधार पर

संसार के समस्त प्राणियों के हृदय को मैं बेहद का आनन्द देकर शीतल कर दूँगी। इस प्रकार, मैं इस जागनी लीला में आपको तरह–तरह का सुख दूँगी।

कोइक दिन साथ मोहना जलमां, लेहेर विना पछटाणा।
वासना घणूं वल्लभ मूने, न सहूंते मुख करमाणा।।२९।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे साथ जी! इस खेल में आने पर कुछ दिनों तक अर्थात् तारतम वाणी के अवतरण के पूर्व तक आप मोह सागर में बिना लहरों के ही थपेड़े खा रहे थे। आप मुझे बहुत ही प्रिय हैं। किसी भी स्थिति में आपके मुख को कुम्हलाया हुआ देखकर मेरे लिये सहन कर पाना सम्भव नहीं है।

प्रकरण ।।१०।। चौपाई ।।३५४।।

प्रकरण हांसीनूं

हँसी का प्रकरण

इस प्रकरण में अपनी भूलों के कारण परमधाम में होने वाली हँसी की लीला का मनोरम वर्णन किया गया है।

मारा साथ सनमंधी चेतियो, ए हांसीनों छे ठाम।
आप वालो घर विसरी, हवे जागी भूलो कां आम।।१।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मेरे परमधाम के सुन्दरसाथ जी! आप सावचेत हो जाइए, क्योंकि आप जिस मायावी जगत में आये हैं, वहाँ आपसे भूल होनी ही है। इसके परिणाम स्वरूप परमधाम में जाग्रत होने पर आपको सबके समक्ष हँसी का पात्र बनना पड़ेगा। इस संसार में आने के पश्चात् आप अपने प्रियतम को,

परमधाम को, तथा स्वयं को भी भुलाकर किसे देख रहे हैं? अब आप ज्ञान दृष्टि से जाग्रत होकर भी इस प्रकार क्यों भूल रहे हैं?

साथजी तमने रामत, जोयानो छे ख्याल।
जेनूं मूल नहीं तेणे बांधिया, ए हांसीनों छे हवाल।।२।।

हे साथ जी! आपने माया का खेल देखने की इच्छा की थी। जिस माया का कोई मूल ही नहीं है अर्थात् जो स्वप्नवत् है, उसी में स्वयं को बाँध लिया है। आपकी यह स्थिति परमधाम में आपकी हँसी का कारण बनेगी।

तमे मांगी रामत विनोदनी, तेणे विलस्या तमारा मन।
वात वालाजीनी विसरी, जे कह्या मूल वचन।।३।।

आपने हँसी का जो खेल माँगा था, आपका मन उसी में

मग्न हो गया है। आपने प्रियतम की उन मूल बातों को भी भुला दिया है, जो उन्होंने परमधाम में कही थीं।

भावार्थ– श्री राज जी द्वारा सखियों से कहा हुआ मूल वचन है– क्या मैं तुम्हारा प्रियतम नहीं हूँ? "उतरते अरवाहों से, हकें कह्या अलस्तो बेरब कुंम।"

गूंथो जाली दोरी विना, आप बांधो मांहें अंग।
अंग विना तमे तरफडो, कांई ए रामतना रंग।।४।।

यह माया का खेल इतना विचित्र है कि आप बिना रस्सी के ही जाल बना रहे हैं तथा अपने हृदय को उससे बाँध रहे हैं। आपके शरीर के वास्तविक अंग तो परमधाम में ही हैं, किन्तु संसार का वास्तविक तन पाकर भी आप दुःखों से तड़प रहे हैं।

आप बंधाणा आपसूं, एणे कोहेडे अंधेर।

चढ्यूं अमल जाणे जेहेरनूं, फरे ते मांहें फेर।।५।।

माया का यह अज्ञान रूपी अन्धकार ऐसा है, जिसमें फँसकर आप स्वयं ही माया से बन्धते जा रहे हैं। ऐसा लगता है कि जैसे आपमें माया का विष प्रवेश कर गया है, जिसके प्रभाव से आप बार-बार इसमें भटक रहे हैं।

अमल चढ्यूं केम जाणिए, कोई आथडे कोई पडे।

कोई मांहें जागी करी, बांहें ग्रही पगथी चढे।।६।।

यह कैसे जाना जाये कि सुन्दरसाथ के ऊपर माया का नशा चढ़ा हुआ है? कोई सुन्दरसाथ धनी के प्रति अपनी निष्ठा खोकर अपने कर्त्तव्य-पथ पर फिसलता है, तो कोई अपना प्रेम खोकर मायाजन्य सुखों की तृष्णा में गिर पड़ता है। कुछ सुन्दरसाथ ऐसे भी होते हैं, जो तारतम

ज्ञान के प्रकाश में जाग्रत हो जाते हैं और अपने विवेक रूपी हाथों से जागनी की सीढ़ी पकड़कर ऊपर चढ़ने का प्रयास करते हैं।

एक पडे पगथी थकी, तेहेनों बीजी ते साहे हाथ।
खाए ते बंने गडथला, कांई रामत ए अख्यात।।७।।

एक सखी बिना सीढ़ी के ही पाँव रख देने के कारण गिर जाती है। उसे गिरा हुआ देखकर दूसरी सखी उसका हाथ पकड़कर उठाने के लिये जाती है, किन्तु दोनों ही लड़खड़ाकर गिर जाती हैं। यह खेल इस प्रकार चल रहा है।

कोई पडे पगथी विना, तेहेने बीजी ते झालवा जाय।
पडे ते बंने मोंहों भरे, ए हांसी एमज थाय।।८।।

कोई सखी बिना सीढ़ी के ही पैर रख देने के कारण गिरी पड़ी होती है। दूसरी उसे उठाने के लिये जाती है, किन्तु दोनों ही मुँह के बल गिर जाती हैं। इस प्रकार, उन दोनों की ही हँसी होती है।

भोम विना ओठूं लिए, अने चरण विना उजाय।
जल विना भवसागर, तेहेमां गलचुवा खाय।।९।।

यह मायावी खेल इस प्रकार का है कि वह बिना धरती के ही उसे आधार बनाये हुए है, अर्थात् यह संसार है ही नहीं, फिर भी इसमें रह रही हैं। पैर नहीं है, फिर भी दौड़ी जा रही हैं (ये पैर भी स्वप्नवत् है जो मृत्यु के पश्चात् समाप्त हो जाने वाले हैं)। वह ऐसे भवसागर में गोते खा रही हैं, जिसमें जल है ही नहीं।

अंत्रीख जुओ ऊभियो, हाथ विना हथियार।

निद्रा छे अति जागते, पिंड विना आकार।।१०।।

हे साथ जी! देखिये, आप आकाश में खड़े हैं अर्थात् आप जिस ब्रह्माण्ड में आये हैं, वह आकाश (निराकार) से बना हुआ है। बिना हाथ के ही आप सारा कार्य कर रहे हैं (स्वप्नवत् होने से आपके हाथ नहीं हैं, किन्तु बाह्य रूप से दिखायी पड़ रहे हैं)। ज्ञान दृष्टि से जाग्रत हो जाने पर भी हृदय में अभी भी माया की गहरी नींद का प्रभाव बना हुआ है। आपका यह शरीर भी निराकार से ही बना हुआ है, जो अन्त में (मृत्यु के पश्चात्) पहले जैसा ही हो जायेगा। आपके वास्तविक तन तो परमधाम के मूल मिलावा में ही विद्यमान हैं।

एक नवी कोई आवी मले, ते कहावे आप अजाण।

कोई मांहें मोटी थई, समझावे सुजाण।।११।।

सुन्दरसाथ के समूह में जब कोई नया सुन्दरसाथ आता है, तो वह स्वयं को अल्पज्ञानी कहता है। किन्तु तारतम ज्ञान से रहित अन्य लोगों में वह एक बहुत बड़े विद्वान की भांति प्रबोधित करता है।

वचन करडा कोई कहे, केने खंडनी न खमाय।

पछे कलपे बंने कलकले, एने अमल एम लई जाय।।१२।।

सुन्दरसाथ में कोई दूसरे को सिखापन देने के लिये जब कठोर शब्दों का प्रयोग करता है, तो अपनी खण्डनी सुनकर वह सहन नहीं कर पाता है। फलतः दोनों ही रो-रोकर दुःखी होते हैं। इस प्रकार माया का नशा उन दोनों को अपने प्रभाव में ले ही लेता है।

खंडी खांडी रडी रडावी, दुख जगवतां दीठा घणा।
जाग्या पछी ज्यारे जोइए, त्यारे बंनेमां नहीं मणा।।१३।।

खण्डनी के कठोर शब्दों को कहने वाला भी रोता है और दुःखी होता है। इसी प्रकार सुनने वाला भी रोता है तथा दुःखी होता है। किन्तु यदि हम जाग्रत होकर देखें, तो स्पष्ट होगा कि इसमें दोष किसी का भी नहीं होता। ऐसा माया के दुष्प्रभाव के कारण ही होता है।

साथ मांहें हांसी थासे, रस रामत एणी रंग।
पूर विना तणाणियों, कोई आडी थाय अभंग।।१४।।

इस खेल में इस प्रकार की जो सुख देने वाली रस-भरी लीलायें हो रही हैं, परमधाम में जाग्रत होने पर सब सुन्दरसाथ के समक्ष इनकी स्मृति दिलाकर बहुत हँसी होगी। यद्यपि इस मोह सागर में न तो जल है और न

लहरें हैं, फिर भी सभी इसकी तृष्णा रूपी लहरों में बहे जा रहे हैं। इनमें कोई-कोई ब्रह्मात्मा ऐसी भी होती है, जो प्रियतम से अपने प्रेम में अखण्डता बनाये रखती है और माया की लहरों से संघर्ष भी करती हुई दिखायी देती है।

हरखे हांसी हेतमां, करसे साथ कलोल।
माया मांगी ते जोई जोपे, रामत झलाबोल।।१५।।

परमधाम में जाग्रत होने पर सुन्दरसाथ हँसी की इस लीला को देखकर बहुत अधिक आनन्दित होंगे तथा प्रेम में भरकर आनन्दमयी क्रीड़ा करेंगे। हे साथ जी! आपने धाम धनी से जो माया माँगी थी, उसे आपने अच्छी प्रकार से देख लिया है। इस हँसी की लीला के समान अन्य कोई भी लीला नहीं होगी।

वृख ऊभो मूल विना, तेहेनूं फल वांछे सहु कोय।

वली वली लेवा दोडहीं, ए हांसी एणी पेरे होय।।१६।।

संसार रूपी यह वृक्ष बिना मूल का है, अर्थात् यह स्वाप्निक है। इसके फल को पाने की तीव्र इच्छा सभी में रहती है, इसलिये उसे पाने के लिये बार-बार दौड़ते हैं। इस प्रकार की भूल के कारण उनकी हँसी होती है।

अछता बंध छूटे नहीं, पेरे पेरे छोडे तोहे।

ए स्वांग सहु मायातणो, साथ बांध्यो रामत जोए।।१७।।

बार-बार छोड़ने का प्रयास करने पर भी माया के ये अदृश्य बन्धन छूटते नहीं हैं। वस्तुतः माया ने ही मोह में बाँधे रखने वाला यह जगत रूपी नाटक रचा है, जिसके खेल में सुन्दरसाथ फँस (उलझ) गये हैं।

प्रकरण ।।११।। चौपाई ।।३७१।।

जागणीनूं प्रकरण

जागनी का प्रकरण

इस प्रकरण में जागनी के ऊपर प्रकाश डाला गया है।

हवे जागी जुओ मारा साथजी, ए छे आपण जोग।
त्रण लीला चौथी घरतणी, चारेनों एहेमां भोग।।१।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मेरे प्राणाधार श्री सुन्दरसाथ जी! अब आप जाग्रत होकर जागनी के सुख का अनुभव कीजिए। यह सुख हमारे लिये ही है। इस जागनी लीला में हम तीनों लीलाओं (व्रज, रास, एवं श्री देवचन्द्र जी के तन से होने वाली जागनी लीला) और श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप से होने वाली चौथी लीला जो परमधाम के सुखों की है, उसका भी रसपान कर सकते हैं।

कह्या न जाय सुख जागणीना, सत ठोरना सनेह।
आ भोमना जेहेवुं केहेवाय, कांइक प्रकासूं तेह।।२।।

जागनी लीला के सुख का वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता, क्योंकि इसमें परमधाम के प्रेम की झलक मिलती है। इस संसार में जागनी लीला के सुख को शब्दों के माध्यम से जितना कहा जा सकता है, मैं उतना कह रही हूँ।

हवे जगवुं जुगते करी, भाजूं भरमना बार।
रंगे रास रमाडी तमारा, सुफल करूं अवतार।।३।।

अब मैं युक्तिपूर्वक आपको जगाऊँगी तथा आपके संशय के द्वार को नष्ट कर दूँगी। जागनी रास के इस खेल में आपको आनन्दित करके मैं इस संसार में अपना आना भी सार्थक करूँगी।

हवे दुख न दऊं फूल पांखडी, सीतल द्रष्टे जोऊं।

सुख सागर मां झीलावी, विकार सघला धोऊं।।४।।

यदि किसी के ऊपर फूलों की पँखुड़ियों को फेंकने से भी कष्ट होता है, तो मैं उतना भी कष्ट सुन्दरसाथ को नहीं होने दूँगी। मैं आपके सभी विकारों को परमधाम के प्रेम से समाप्त कर दूँगी और आपको आनन्द के अनन्त सागर में स्नान कराऊँगी।

आगे कलकलीने कह्यूं रे सखियो, तोहे न गयो विकार।

कठण सही तमे खंडनी, वचन खांडा धार।।५।।

पहले मैंने आपको जाग्रत करने के लिये बहुत ही कठोर शब्दों का प्रयोग किया। आपने भी तलवार की धार के समान खण्डनी के मेरे तीखे वचनों को सहन किया। आप उन वचनों से दुःखी होकर रोये भी अवश्य, किन्तु

मायावी विकारों ने तब भी आपका साथ नहीं छोड़ा।

ते वचन घणूं साले मूने, कठण तमने जे कह्या।
मारी वासनाओने निद्रा मांहें, मूल घर विसरी गया।।६।।

हे साथ जी! आपको जागनी के प्रति सावधान करने के लिये मैंने बहुत ही कठोर वचनों का प्रयोग किया है, जिसके कारण मेरा हृदय आज तक व्यथित होता रहा है। इस नश्वर संसार में आकर ब्रह्मसृष्टियों को तो अपने मूल घर परमधाम की भी याद नहीं रही है।

हवे विन ताए गालूं तमने, करूं ते रस कंचन।
कसनो रंग एवो चढावुं, बेहू पेरे करूं धंन धंन।।७।।

अब मैं कठोर वचन बोले बिना ही आपको प्रियतम के प्रेम में गलितगात कर दूँगी और शुद्ध सोने (कञ्चन) के

समान निर्मल कर दूँगी। आपको परमधाम के अपार आनन्द में डुबोकर दोनों जगह (यहाँ भी और परमधाम में भी) धन्य-धन्य कर दूँगी।

जाणूं साथ जी विदेस आव्या, दुख दीठां कै भांत।
ते माटे सुख आंणी भोमे, देवानी मूने खांत।।८।।

हे साथ जी! मैं इस बात को अच्छी तरह से जानती हूँ कि आप इस मायावी जगत (विदेश) में आये हुए हैं और अनेक प्रकार के दुःखों का अनुभव किया है। इसलिये इस संसार में आपको सुख देने की मेरे मन में प्रबल चाहना है।

खीजे वढे वासना न जागे, जगव्यानी जुगत जुइ।
आप जाग्यानी जुगत आपूं, त्यारे केम रहे वासना सुइ।।९।।

सुन्दरसाथ को क्रोध में केवल फटकारने मात्र से वे जाग्रत नहीं होंगे। आप जगाने की युक्ति पर विचार कीजिए। यदि आप तारतम वाणी द्वारा प्रेमपूर्वक युक्ति से उन्हें जगायेंगे, तो भला कोई भी आत्मा माया में सोयी हुई कैसे रह सकती है।

खंडी खांडी खीजिए, जागे नहीं एणी भांत।
आपोपूं ओलखाविए, साख पुराविए साख्यात।।१०।।

यदि आप जागनी के नाम पर सुन्दरसाथ की केवल खण्डनी करके अपना क्रोध ही दिखाते रहेंगे, तो इस प्रकार से किसी की भी जागनी नहीं होगी। सुन्दरसाथ को जगाने के लिये यह आवश्यक है कि उन्हें प्रत्यक्ष रूप से धर्मग्रन्थों की साक्षी देकर उनके आत्म-स्वरूप की पहचान दी जाये।

हवे जगावी सुख दऊं संभारणूं, करों आप आपणी वात।
साथ सहु अम पासे बेसी, करों सहु विख्यात।।११।।

मैं आपको परमधाम के अखण्ड सुखों की याद दिलाने के लिये जगा रही हूँ, जिससे कि अपने सुन्दरसाथ से परमधाम और अपने प्रियतम की बातें कर सकूँ। आप सभी जाग्रत होकर जब मेरे पास बैठेंगे, तो मैं उस समय प्रियतम अक्षरातीत की शोभा एवं लीला को उजागर करूँगी।

आगे आवेस मूं कने धणीतणो, वली निध बीजी दीधी।
निसंक निद्रा उडाडी, साख्यात बेठी कीधी।।१२।।

मेरे धाम-हृदय में प्रियतम का आवेश स्वरूप तो विराजमान है ही, उन्होंने दूसरी निधि के रूप में मुझे जाग्रत बुद्धि भी दी है। हब्शा में मेरी मायाजन्य नींद को

उन्होंने स्पष्ट रूप से समाप्त कर दिया और मेरे धाम– हृदय में अपने आवेश स्वरूप से साक्षात् विराजमान हो गये।

हवे रेहेवाय नहीं खिण अलगां, जागणी एम जाणो।
अहंमेव जाग्यो धामनो, अम मांहें एह भराणो।।१३।।

जब प्रियतम अक्षरातीत से एक पल का भी वियोग सहन न हो, तो यह मान लेना चाहिये कि मेरी आत्मा जाग्रत हो गयी है। अब मेरे अन्दर परमधाम की "मैं" जाग्रत हो गयी है, अर्थात् अपने परात्म स्वरूप का वास्तविक बोध हो गया है।

पहली जोगमाया थई रासमां, तेहेनो ते अति अजवास।
पण आ जे थासे जागणी, तेहेनों कह्यो न जाय प्रकास।।१४।।

महारास की लीला में कुछ नींद तथा कुछ जाग्रत अवस्था की स्थिति थी। उस रास की महिमा (प्रकाश) बहुत अधिक है, किन्तु तारतम वाणी के प्रकाश में सुन्दरसाथ के एकत्रित होने से जो जागनी लीला होगी, उसकी गरिमा को शब्दों में व्यक्त कर पाना सम्भव नहीं है।

हवे अधखिण अलगां, साथ विना में न रेहेवाय।

आ लेहेर जे मायातणी, साथ ऊपर में न सेहेवाय।।१५।।

अब मैं आधे क्षण के लिये भी सुन्दरसाथ के बिना नहीं रह सकती। मैं यह भी सहन नहीं कर सकती कि सुन्दरसाथ को माया की थोड़ी भी लहर लगे (प्रभाव पड़े)।

साथजी आ भोमना, सुख आपीस तमने अपार।
हेते ते हंससो हरखमां, तमे नाचसो निरधार।।१६।।

हे साथ जी! मैं आपको इस संसार में होने वाली जागनी लीला के अपार आत्मिक सुखों का इस प्रकार अनुभव कराऊँगी कि आप निश्चित रूप से प्रेम और आनन्द में मग्न होकर नाचने लगेंगे, अर्थात् अपार आनन्द का अनुभव करेंगे।

मारा प्राणना प्रीतम छो, अंगनानी आतम टोली।
कलपया मन रामत जोतां, नाखूं ते दुखडा घोली।।१७।।

श्री महामति जी के धाम-हृदय में विराजमान श्री राज जी कहते हैं कि हे साथ जी! आप मेरे प्राणों के प्रियतम हैं और आपकी आत्माओं का समूह मेरी अँगना है। इस माया का खेल देखने से आपके मन दुःखी हो रहे हैं,

इसलिये मैं उस दुःख को समाप्त कर देता हूँ।

करमाणा मुखडा मनना, ते तमारा हूं नव सहूं।
ए दुख सुखनों स्वाद देसे, तोहे दुख हूं नव दऊं।।१८।।

हे साथ जी! मैं यह कदापि सहन नहीं कर सकता कि आपके मन के दुःख से आपके मुख मुरझाये हुए से दिखें। यद्यपि इन मायावी दुःखों से भी आपको परमधाम के सुख का स्वाद ही मिलेगा, फिर भी मैं आपको दुःख नहीं दे सकता।

सत सुखमां सुख देसे, आ भोमना दुख जेह।
तमे हंससो हरखमां, रस देसे दुखडा एह।।१९।।

इस संसार में आपको जो भी दुःख मिल रहे हैं, वे आपका ध्यान संसार से हटाकर मेरे प्रति केन्द्रित कर

देंगे। परिणाम स्वरूप, आपको मेरी सान्निध्यता प्राप्त होगी। इस प्रकार, ये दुःख भी आपको यहाँ पर परमधाम के सुखों का अनुभव करायेंगे और परमधाम के अखण्ड सुख में भी और अधिक सुख का अनुभव करायेंगे, क्योंकि आपने माया में मुझे पा लिया होगा। माया के ये दुःख भी आपको मेरे प्रेम में डुबोकर इतना अधिक आनन्द देंगे कि आप परात्म में जाग्रत होने पर प्रसन्नतापूर्वक हँसेंगे।

अमें उपाई आनंद माटे, रामत तो तमे मांगी।
रामतना सुख दऊं साचा, चालसूं आंहीं जागी।।२०।।

हे साथ जी! आपने माया का खेल देखने की इच्छा की थी और आपको आनन्दित करने के लिये ही मैंने यह खेल बनाया। अब मैं आपको इस खेल का सच्चा सुख

दूँगा। यहाँ आप जाग्रत होकर परमधाम चलेंगे।

सेहेजल सुखमां रेहे सदा, अलप नथी असुख।
तमें सुखनों स्वाद लेवा ने, मांगी रामत दुख।।२१।।

परमधाम में तो आपको सदा ही अखण्ड सुख का रस प्राप्त होता रहा है। वहाँ अल्प मात्रा में भी कहीं दुःख नहीं है। आपने तो सुख का स्वाद लेने के लिये ही यह दुःख का खेल माँगा था।

रामत मांगी दुखनी, त्यारे कह्यूं अमे एम।
दुखनी रामत तमने, देखाडूं अमें केम।।२२।।

हे साथ जी! जब आपने मुझसे दुःख का खेल देखने की इच्छा की थी, मैंने तभी आपको मना किया था कि मैं किस प्रकार से आपको दुःख का खेल दिखाऊँ।

दुख तो केमें दऊं नहीं, तो रामत केम जोवाय।
खांत खरी जोया तणी, तेहेनो ते एह उपाय।।२३।।

यह तो ठीक है कि मैं आपको किसी भी प्रकार से दुःख नहीं दे सकता, किन्तु इस स्थिति में आप खेल कैसे देखेंगे? आपके मन में माया का खेल देखने की स्पष्ट इच्छा थी, इसलिये उसका एकमात्र उपाय यही था कि आपको माया का खेल दिखाया ही जाये।

अमें रामत जाणी घरतणी, जेम रमूं छूं सदाय।
अमें ऊभा जोइसूं, रामत एणी अदाय।।२४।।

सुन्दरसाथ कहते हैं कि हे धाम धनी! हमने तो यही समझा था कि माया का दुःखमयी खेल भी परमधाम की लीलाओं की तरह बहुत मनोरञ्जक होगा, और हम खेल का आनन्द वैसे ही लेंगे जैसे अति सरलतापूर्वक (खड़े–

खड़े) परमधाम की लीलाओं का लिया करते हैं।

वस्तोगते दुख कांई नथी, जो पाछी वालो द्रष्ट।
जुओ जागी वचने, तो नथी कांइए कष्ट।।२५।।

अब श्री राज जी उत्तर देते हैं कि हे साथ जी! यदि आप माया से अपनी दृष्टि हटाकर परमधाम की ओर कर लेते हैं, तो यथार्थता यही है कि संसार में कुछ भी दुःख नहीं है। यदि आप जाग्रत होकर तारतम वाणी के वचनों से विचार करते हैं (देखते हैं), तो यह विदित होगा कि इस नश्वर जगत में भी कोई कष्ट नहीं है।

लागसो जो दुखने, तो दुख तमने लागसे।
मूल सुख संभारसो, तो दुख पाछा भागसे।।२६।।

यदि आप इस दुःखमयी संसार के मोह में लिपटे रहेंगे,

तो आपको दुःख भोगना ही पड़ेगा। इसके विपरीत, यदि आप परमधाम के अखण्ड सुखों के ध्यान में डूबे रहेंगे, तो दुःख सदा आपसे दूर ही रहेंगे।

द्रष्ट वाली जो जुओ, तो दुख कांइए नथी।
रामतना रंग करसो आंही, विनोद वातों मुख थकी।।२७।।

पुनः यदि आप अपनी आत्मिक दृष्टि से परमधाम एवं युगल स्वरूप को देखेंगे, तो दुःखों के बन्धन से दूर ही रहेंगे और इस खेल में आनन्द का अनुभव करेंगे। परात्म में जाग्रत होने के पश्चात् आप अपने श्रीमुख से बहुत ही विनोदपूर्वक इस खेल की बातें करेंगे।

सागर सुखमां झीलतां, जिहां दुख नहीं प्रवेस।
ते माटे तमे दुख मांग्या, ते देखाड्या लवलेस।।२८।।

आप परमधाम में सुख के अनन्त सागर में क्रीड़ा किया करते थे। वहाँ तो स्वप्न में भी दुःख का प्रवेश नहीं है। इसलिये आपने दुःख देखने की इच्छा की थी, जिसे पूर्ण करने के लिये मैंने आपको नाम मात्र ही दुःख दिखाया है।

पोढया भेलां जागसे भेलां, रामत दीठी सहु एक।
वातो ते करसूं जुजवी, विध विधनी विसेक।।२९।।

परमधाम में आप खेल देखने के लिये एकसाथ ही बैठे और इस खेल को सभी ने एकसाथ ही माया में आकर देखा भी है। अपनी परात्म में भी सभी एकसाथ ही जाग्रत होंगे, किन्तु सभी अपनी-अपनी जागनी लीला की अलग-अलग प्रकार की विशेषता बताते हुए बातें करेंगे।

दुख तमारा नव सहुं, ते चोकस जाणो चित।

ए दुख ते सुख घणा देसे, रंग रस ए रामत।।३०।।

आप अपने चित्त में यह बात अच्छी तरह से बसा लीजिए कि मैं आपको किसी भी स्थिति में दुःखी नहीं देख सकता। आपको इस संसार में जो भी दुःख देखने को मिल रहे हैं, उनसे विवेक लेकर यदि आपने विरह-प्रेम का मार्ग अपना लिया, तो यह दुःख भी आपको परमधाम का अपार सुख देने वाला हो जायेगा। फलतः आपको इस खेल में अखण्ड प्रेम तथा आनन्द का अनुभव होगा।

साथने आ भोमना, सुख देवानो हरख अपार।

रंगे रास रमाडीने, भेलां जागिए निरधार।।३१।।

हे साथ जी! इस मायावी खेल में भी आपको परमधाम

का सुख देने में मुझे अपार प्रसन्नता है। आप निश्चित रूप से इस जागनी लीला में परमधाम का आनन्द प्राप्त कीजिए और एकसाथ ही जाग्रत हो जाइए।

हवे ल्यो रे मारा साथजी, आ भोमना जे सुख।
सही न सकूं तमतणा, जे दीठां तमे दुख।।३२।।

मेरे प्रिय सुन्दरसाथ जी! अब आप इस संसार में निजधाम के सुखों का आनन्द लीजिए। आपने अब तक इस मायावी जगत में जो कुछ भी दुःख देखा है, आपका पुनः वैसे ही दुःखी होना मैं सहन नहीं कर सकता।

लेहेर लागे तमने मोहनी, ते हवे हूं नव सकूं सही।
खंडनी पण नव करूं, जाणू दुखवुं केम मुख कही।।३३।।

श्री इन्द्रावती जी की आत्मा कहती हैं कि हे साथ जी!

मेरी आत्मा को यह कदापि सहन नहीं हो सकता कि आपके ऊपर मोह सागर (माया) की लहरों का कोई प्रभाव पड़े। अब मैं अपने मुख से खण्डनी के शब्द कहकर आपको थोड़ा भी दुःखी नहीं होने दूँगा।

हवे कसोटी केम दऊं तमने, करमाणां मुख ते नव सहूं।
ते माटे वचन कठण, मारा वालाओने केम कहूं।।३४।।

हे साथ जी! आप मुझे बहुत प्यारे हैं, इसलिये मैं किसी भी स्थिति में आपके मुख को मुर्झाया हुआ नहीं देख सकता। अब न तो मैं आपको कष्टसाध्य परीक्षाओं से गुजारूँगा और न ही आपके लिये कभी कठोर वचनों का प्रयोग करूँगा।

बांहें ग्रहीने तारूं तमने, जेम लेहेर न लगे लगार।

सुखपालमां सुखे बेसाडी, घेर पोहोंचाडूं निरधार।।३५।।

अब मैं आपका हाथ पकड़कर इस भवसागर से इस प्रकार पार उतारूँगा कि आपके ऊपर माया का नाम मात्र भी प्रभाव न पड़ने पाए। मैं निश्चित रूप से आपको प्रेम रूपी सुखपाल में बैठाकर परमधाम ले चलूँगा।

अंगथी आपी उपजावूं, रस प्रेमना प्रकार।

प्रकास पूरण करी सेहेजे, टालूं ते सर्वे विकार।।३६।।

मैं आपके हृदय में तारतम वाणी का पूर्ण प्रकाश करके तरह-तरह के अलौकिक प्रेम-रस वाले भावों को उत्पन्न करूँगा। इस प्रकार, मैं आपके सभी विकारों को नष्ट कर दूँगा।

अंग आप्या विना आवेस, प्रेम प्रगट केम थाय।
आवेस दई करूं जागणी, जेम मारा अंगमां समाय।।३७।।

जब तक मैं आपके हृदय में प्रियतम के ज्ञान का आवेश नहीं दूँगा, तब तक आपके हृदय में प्रेम उत्पन्न नहीं होगा। मैं आपके हृदय में ज्ञान द्वारा भावावेश देकर आपकी आत्मा को जाग्रत करूँगा तथा अपको अपने हृदय में मिला लूँगा।

हवे सहु भेलां तो चालिए, जो अंग मांहेंथी देवाय।
जोगमाया तो थाय तमने, जो सांचवटी वटाय।।३८।।

यदि मेरे हृदय में विद्यमान परमधाम का सत्य ज्ञान आपको प्राप्त हो जाता है, तो आप सबको एकसाथ ही जागनी के मार्ग पर चलना चाहिये। इस अवस्था में ही आपका जीव योगमाया में अखण्ड हो सकेगा।

हवे आवतां दुख वासनाओने, तिहां आडो दऊं मारो अंग।
सारी पेरे सुख दऊं तमने, मांहें न करूं वचे भंग।।३९।।

यदि जागनी के इस स्वर्णिम मार्ग में चलने पर आपको कोई कष्ट होता है, तो उसे मैं स्वयं अपने ऊपर ले लूँगा। मैं आपको अच्छी प्रकार से परमधाम के सुखों की अनुभूति कराऊँगा और उसमें कभी बीच में कोई भी व्यवधान (बाधा) नहीं आने दूँगा।

ए लीला करूं एणी भांते, तो रास रंग रमाय।
विध विधना सुख दऊं विगते, विरह वासनाओं नो न खमाय।।४०।।

यदि मैं इस प्रकार से जागनी लीला करूँ, तो आपको जागनी रास का आनन्द मिलेगा। अब आपको मैं परमधाम के तरह-तरह के सुखों (ज्ञान, प्रेम, एकत्व आदि) का रस दूँगा। जागनी के पुनीत मार्ग पर चल देने

वाली आत्माओं से प्रियतम का विरह सहा नहीं जाता है।

जागणीना सुख दऊं तमने, रास मांहें रमाडूं रंग।
सततणा सुख केम आवे, जिहां न दऊं मारू अंग।।४१।।

श्री राज जी कहते हैं कि हे साथ जी! मैं आपको जाग्रत करके परमधाम के सुखों का रसास्वादन कराऊँगा तथा उसी प्रेममयी लीला के आनन्द में डुबोये रखूँगा। जब तक मैं आपको अपने हृदय का प्रेम नहीं दूँगा, तब तक आपको अखण्ड धाम के सुखों का अनुभव कैसे हो सकता है।

अंग आपी अंगनाने, अंगना भेलूं अंग।
पास दऊं पूरो प्रेमनो, करूं ते अविचल रंग।।४२।।

मैं आत्माओं को अपना हृदय देकर उन्हें अपने हृदय में

मिला लूँगा और उन्हें अपने प्रेम के रस में डुबोकर परमधाम के अखण्ड प्रेम की प्रतिमूर्ति ही बना दूँगा।

असतथी अलगां करूं, सतसूं करावुं संग।
परआतमासूं बंध बांधूं, जेम प्रले न थाय कहिए भंग।।४३।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे साथ जी! मैं आपकी अन्तर्दृष्टि (सुरता) को इस नश्वर संसार से हटाकर अखण्ड परमधाम में ले जाऊँगी। वहाँ विद्यमान आपकी परात्म से आपकी सुरता का ऐसा सम्बन्ध कर दूँगी कि वह संसार के प्रलय होने तक भी नहीं टूटेगा।

धणिए जगावी मूने एकली, हूं जगवुं बांधा जुथ।
दुखनी भोम दूथी घणी, ते करी दऊं सत सुख।।४४।।

प्रियतम अक्षरातीत ने हब्शा में मात्र मुझे ही जगाया था,

किन्तु मैं उनके आदेश से सुन्दरसाथ के यूथ के यूथ (बड़े-बड़े समूहों) को जगाऊँगा। यह सारा ब्रह्माण्ड ही दुःखमय है। इसमें रहना बहुत कठिन है, इसलिये मैं इसे बेहद मण्डल की अखण्ड मुक्ति का सुख दूँगी।

साथ करूं सहु सरखो, तो हूं जागी प्रमाण।
जगाडी सुख दऊं धामना, पोहोंचाडूं मूल एधाण।।४५।।

मेरी आत्मा का जाग्रत होना तभी सार्थक होगा, जब सब सुन्दरसाथ को अपने समान कर दूँ, अर्थात् जिस प्रकार मेरे धाम-हृदय में युगल स्वरूप विराजमान हैं, उसी प्रकार सभी के हृदय में युगल स्वरूप की छवि बसा दूँ। मैं सब सुन्दरसाथ को परमधाम के २५ पक्षों तथा अष्ट प्रहर की लीला की पहचान कराकर जाग्रत करूँगा तथा निजधाम के सुखों में डुबो दूँगा।

आवेस जेहेने में दीठां पूरा, जोगमायानी निद्रा तोहे।
पण जे सुख दीसे जागतां, अम विना न जाणे कोय।।४६।।

जिस सद्गुरू धनी श्री देवचन्द्र जी के अन्दर मैंने धाम धनी के आवेश स्वरूप की विद्यमानता देखी थी, उनमें योगमाया की निद्रा जैसी अवस्था थी, अर्थात् उनमें व्रज, रास, और धाम की सुधि तो थी, किन्तु जागनी की सुधि नहीं थी। जागनी से जो सुख प्राप्त होता है, उसे हमारे अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं जानता है।

जे जागी बेठा निजधाममां, तेहेने आवेसनों सूं कहिए।
तारतम तेज प्रकास पूरण, तेणे सकल विधे सुख लहिए।।४७।।

जो अपनी आत्मा के धाम-हृदय में जाग्रत हो जाते हैं, अर्थात् जिनकी आत्मा के हृदय में युगल स्वरूप सहित सम्पूर्ण २५ पक्षों की शोभा बस जाती है, उनके अन्दर

प्रियतम के आवेश की विद्यमानता के सम्बन्ध में क्या संशय किया जा सकता है? उनके अन्दर तारतम ज्ञान का पूर्ण प्रकाश होता है। हे साथ जी! आप ऐसे स्वरूप से परमधाम का प्रत्येक प्रकार का सुख अवश्य प्राप्त कीजिए।

आवेसने नहीं अटकल, पण जागवुं अति भारी।
आवेस जागवुं बंने तारतमें, जो जुओ जुगत विचारी।।४८।।

श्री देवचन्द्र जी के धाम–हृदय में श्री राज जी के आवेश स्वरूप के विराजमान होने के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का कोई संशय नहीं है, किन्तु जागनी की गरिमा बहुत अधिक है। धाम धनी ने श्यामा जी के पहले तन को जागनी की शोभा नहीं दी। हे साथ जी! यदि आप जाग्रत होकर विचारपूर्वक देखें, तो यह स्पष्ट होगा कि जागनी के

लिये आवेश के साथ तारतम ज्ञान (वाणी) का होना आवश्यक है।

पैया सहुना काढे प्रगट, नहीं तारतमने अटकल।
आवेस जागवुं हाथ धणीने, एह अमारू बल।।४९।।

तारतम ज्ञान में किसी भी प्रकार का संशय नहीं है। वह निराकार–बेहद से परे परमधाम का सर्वोपरि मार्ग बताता है। अपने आवेश स्वरूप से धाम–हृदय में विराजमान होकर जागनी की शोभा देना तो धनी की कृपा एवं इच्छा पर निर्भर है। वस्तुतः आत्म–जाग्रति ही हमारी शक्ति है।

तारतमना सुख साथ आगल, विध विधना वाले कीधां।
पछे ए सुख एकली इंद्रावतीने, दया करी धणिए दीधां।।५०।।

प्रियतम अक्षरातीत ने श्री देवचन्द्र जी के तन में

विराजमान होकर तारतम ज्ञान से मिलने वाले तरह-तरह के आत्मिक सुखों का वर्णन किया। इसके पश्चात् उस तन को छोड़कर वे मेरे धाम-हृदय में बैठे और अति कृपा कर मुझे उन सभी सुखों को प्रदान किया।

धंन धंन धणी धंन तारतम, धंन धंन सखी जे ल्यावी।
धंन धंन सखी हूं सोहागणी, मुझ मांहें ए निध आवी।।५१।।

प्रियतम श्री राज जी धन्य-धन्य हैं, तारतम ज्ञान धन्य-धन्य है। इस अनुपम ज्ञान को लाने वाली श्यामा जी धन्य-धन्य हैं। मुझ सुहागिन इन्द्रावती को तारतम ज्ञान की निधि एवं जागनी की शोभा मिली, जिससे मैं भी धन्य-धन्य हो गयी हूँ।

मूं माटे ल्याव्या धणी धामथी, बीजा कोणे न थयूं एनूं जाण।
में लीधूं पीधूं विलसियूं, विस्तारियूं प्रमाण।।५२।।

धाम धनी तारतम वाणी की यह निधि मेरे लिये ही लेकर आये, किन्तु किसी को भी इस रहस्य का बोध नहीं हुआ कि एकमात्र मेरे ही तन से ब्रह्मवाणी का अवतरण क्यों हो रहा है? मैंने हब्शा में अपने प्राणेश्वर को साक्षात् पा लिया और उनके प्रेम का आनन्द लिया। परिणाम स्वरूप, मेरे तन से तारतम ज्ञान का वाणी के रूप में विस्तार हुआ।

ए वाणी साथ मांहें केहेवाणी, पण केने न कीधो विचार।
पछे दया करीने दीधूं वाले, अंग इंद्रावतीने आ वार।।५३।।

सद्गुरू धनी श्री देवचन्द्र जी के मुखारविन्द से सुन्दरसाथ ने तारतम ज्ञान की चर्चा तो सुनी, किन्तु

किसी ने भी उनके कथनों पर गम्भीरतापूर्वक चिन्तन नहीं किया। उनकी अन्तर्धान लीला के पश्चात् श्री राज जी ने मेरे ऊपर अपार कृपा (दया) की और मेरे धाम-हृदय में विराजमान होकर तारतम ज्ञान का अनेक ग्रन्थों के रूप में विस्तार किया।

घणूं धन ल्याव्या धणी धामथी, बहु विधना प्रकार।
ते धन सर्वे में तोलियूं, तारतम सहुमां सार।।५४।।

धाम धनी परमधाम से अनेक प्रकार का बहुत सा धन लेकर आये हैं। जब मैंने उसका मूल्यांकन किया, तो तारतम ज्ञान ही सबका सार तत्त्व निकला।

तारतमनों बल कोई न जाणे, एक जाणे मूल सरूप।
मूल सरूपना चितनी वातो, तारतममां कई रूप।।५५।।

तारतम ज्ञान की महिमा (शक्ति) को मूल स्वरूप श्री राज जी के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं जानता है। अक्षरातीत के हृदय में प्रेम, आनन्द, ज्ञान, एकत्व आदि के जो सागर उमड़ा करते हैं, वे ही तारतम वाणी के कथनों में अनेक रूपों में ज्ञान दृष्टि से प्रकट हुए हैं।

साख्यात सरूप इंद्रावती, तारतमनो अवतार।
वासना हसे ते वलगसे, ए वचन ने विचार।।५६।।

श्री इन्द्रावती जी के अन्दर साक्षात् अक्षरातीत का आवेश स्वरूप विराजमान है, इसलिये इस जागनी लीला में वे तारतम के अवतार रूप में ही प्रकट हुई हैं। जो भी परमधाम की आत्मा होगी, वह तारतम वाणी के वचनों का विचार करके धनी के चरणों से लिपट जायेगी।

सरूप साथनी ओलखाण, तारतममां अजवास।

जोत उद्दोत प्रगट पूरण, इंद्रावतीने पास।।५७।।

तारतम ज्ञान के उजाले में ही मूल स्वरूप श्री राज जी तथा सुन्दरसाथ की पहचान होती है। धाम धनी द्वारा श्री इन्द्रावती जी के धाम-हृदय में तारतम ज्ञान का पूर्ण उजाला हुआ है।

वासनाओंनी ओलखाण, वाणी करसे तेणे ताल।

निसंक निद्रा उडी जासे, सांभलतां तत्काल।।५८।।

तारतम वाणी से परमधाम की आत्माओं की तत्क्षण पहचान हो जाती है। जो भी आत्मा इस ब्रह्मवाणी का श्रवण (चिन्तन-मनन) करेगी, निश्चित रूप से उसकी मायाजन्य नींद समाप्त हो जायेगी।

एक लवो सुणे जो वासना, ते संग न मूके खिण मात्र।
ते थाय गलितगात्र अंगे, प्रगट दीसे प्रेम पात्र।।५९।।

यदि परमधाम की किसी ब्रह्मसृष्टि को श्रीमुखवाणी का एक शब्द भी सुनने के लिये मिल जाये, तो उसे इतना अधिक विश्वास हो जायेगा कि वह एक पल के लिये भी मेरा साथ नहीं छोड़ सकती है। उसके अंग–अंग में प्रेम ही प्रेम दृष्टिगोचर होगा। वह इस तथ्य को सिद्ध कर देगी कि प्रियतम के प्रेम को आत्मसात् करने की उसमें पूर्ण क्षमता है।

ए वाणी सांभलतां जेहने, आवेस न आव्यो अंग।
ते नहीं नेहेचे वासना, तेनो करूं जीव भेलो संग।।६०।।

इस ब्रह्मवाणी (तारतम वाणी) को सुनने के पश्चात् भी जिसके हृदय में प्रेम का आवेश नहीं आता, उसे निश्चित

रूप से परमधाम की ब्रह्मसृष्टि नहीं कह सकते। उसे मैं जीव सृष्टि के अन्तर्गत या समकक्ष (समान) ही मानता हूँ।

वासना जीवनो वेहेरो एटलो, जेम सूरज द्रष्टे रात।
जीव तणो अंग सुपननों, वासना अंग साख्यात।।६१।।

आत्मा एवं जीव में इतना अन्तर है, जितना अन्तर उगे हुए सूर्य एवं रात्रि में होता है। जीव के अंग स्वाप्निक होते हैं, जबकि आत्मा साक्षात् अक्षरातीत की ही अँगरूपा होती है।

वली वेहेरो वासना जीवनो, एना जुजवा छे ठाम।
जीवतणो घर निद्रा मांहें, वासना घर श्री धाम।।६२।।

आत्मा तथा जीव में यह भी अन्तर है कि इनके मूल घर

भी अलग–अलग हैं। जीव का घर मोह सागर है, जबकि आत्मा का घर परमधाम है।

न थाय नवो न लोपाय जूनो, श्री धाम एणी प्रकार।
घटे वधे नहीं पत्र एके, सत सदा सर्वदा सार।।६३।।

परमधाम इस प्रकार का है कि वह सर्वदा एकरस रहता है। वह न तो कभी नया हो सकता है और न कभी पुराना होता है। परमधाम में एक पत्ता भी न तो घट सकता है और न बढ़ सकता है, वहाँ प्रत्येक वस्तु का स्वरूप अखण्ड है, जो सदा शाश्वत रहने वाला है।

जदिप संग थयो कोई जीवनो, तेनो न करूं मेलो भंग।
ते रंगे भेलूं वासना, वासना सतनो अंग।।६४।।

श्री राज जी कहते हैं कि जीव जिस आत्मा की संगति

करता है, उसका संयोग मैं नहीं तोड़ता हूँ, अर्थात् जिस जीव पर आत्मा विराजमान होती है और उसी तन के रहते (माध्यम से) जाग्रत हो जाती है, तो खेल के समाप्त होने तक आत्मा का उस जीव के संयोग सदा ही बना रहता है। मैं उस जीव को भी आत्मा के साथ ही आनन्दित करता हूँ, जबकि आत्मा मेरी ही अँगरूपा है तथा जीव स्वाप्निक है।

तारतम तेज प्रकास पूरण, इंद्रावतीने अंग।
ए मारूं दीधूं में देवाय, हूं इंद्रावतीने संग।।६५।।

श्री इन्द्रावती जी के धाम-हृदय में तारतम ज्ञान का पूर्ण प्रकाश है, जिसे मैंने स्वयं उन्हें प्रदान किया है और उनके द्वारा आप सभी को दिलवा रहा हूँ। यह निश्चित है कि मैं पल-पल उनके साथ हूँ, अर्थात् उनके धाम-

हृदय में विराजमान हूँ।

इंद्रावतीने हूं अंगे संगे, इंद्रावती मारू अंग।

जे अंग सोंपे इंद्रावतीने, तेने प्रेमें रमाडूं रंग।।६६।।

मैं श्री इन्द्रावती जी के अंग-संग हूँ (उनके धाम-हृदय में विद्यमान हूँ)। वह मेरी अँगरूपा हैं, अर्धांगिनी हैं। जो भी सुन्दरसाथ उनके प्रति अपने हृदय में समर्पण भाव रखेगा, उसे मैं प्रेम के आनन्द में डुबो दूँगा।

बुध तारतम भेला बंने, तिहां पेहेले पधारया श्री राज।

अंग मारे अजवास करी, साथना सारया काज।।६७।।

श्री इन्द्रावती जी के जिस धाम-हृदय में जाग्रत बुद्धि तथा तारतम ज्ञान विद्यमान है, उसमें मैं पहले से ही आवेश स्वरूप से विराजमान हूँ। इन दोनों ने मेरे धाम-

हृदय में प्रवेश कर परमधाम के ज्ञान का उजाला किया तथा सुन्दरसाथ के भी कार्यों को पूर्ण कर दिया।

सुख दऊं सुख लऊं, सुखमां ते जगवुं साथ।
इंद्रावतीने उपमा, में दीधी मारे हाथ।।६८।।

मैं ही सुन्दरसाथ को प्रेम का सुख देता हूँ तथा उनसे प्रेम का सुख लेता हूँ। मैं सुन्दरसाथ को बिना किसी भी प्रकार का कष्ट दिये हुए सुखपूर्वक जाग्रत करता हूँ। यह सम्पूर्ण लीला मैं श्री इन्द्रावती जी के धाम-हृदय में ही रहकर करता हूँ और उन्हें सारी शोभा देता हूँ।

में दया तमने कीधी घणी, जो जुओ आंख उघाडी।
नहीं जुओ तोहे देखसो, छाया निसरी ब्रह्मांड फाडी।।६९।।

हे साथ जी! यदि आप अपनी अन्तर्दृष्टि को खोलकर

देखें, तो आपको मेरी उस कृपा (दया) की भी पहचान हो जायेगी (जो मैंने आपके प्रति की है), किन्तु यदि आप इस संसार में अपनी आन्तरिक दृष्टि से नहीं भी देख पाते हैं, तो भी जब आपकी आत्मा इस ब्रह्माण्ड को छोड़कर परमधाम में अपनी परात्म में जाग्रत होगी, तब वहाँ पर मेरे द्वारा इस खेल में होने वाली कृपा की वास्तविक पहचान हो जायेगी।

मूलगी आंखां दऊं उघाडी, जेम आडी न आवे मोह सृष्ट।
सत सुखने ओलखावुं, जेम घर आवे द्रष्ट।।७०।।

हे साथ जी! मैं आपकी बन्द पड़ी आत्मिक दृष्टि को खोल दूँगा, जिससे यह मायावी ब्रह्माण्ड दर्शन में बाधा रूप होकर आपकी दृष्टि में न आये। इससे आपको परमधाम की अनुपम शोभा भी दिखायी देगी और आप

अपने अखण्ड सुख की भी पहचान कर लेंगे।

तारतमनो जे तारतम, अंग इंद्रावती विस्तार।
पैया देखाड्या सारना, तेने पारने वली पार।।७१।।

श्री इन्द्रावती जी के धाम-हृदय से तारतम के भी तारतम (खिल्वत, परिक्रमा, सागर, श्रृंगार) का विस्तार हुआ है। इसने निराकार से परे बेहद और अक्षर से भी परे परमधाम का मार्ग दर्शाया है।

ब्रह्मांड बंने अखंड कीधां, तेमां लीला अमारी।
ब्रह्मांड त्रीजो अखंड करवो, ए लीला अति भारी।।७२।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि व्रज एवं रास के दोनों ब्रह्माण्ड अखण्ड हो चुके हैं। इन दोनों में हमारी ही लीला अखण्ड है। अब जागनी के इस तीसरे ब्रह्माण्ड को भी

अखण्ड करना है। यह जागनी लीला बहुत ही गरिमामयी है।

त्रण लीला माया मधे, अमे प्रेमे मांणी जेह।
आ लीला चौथी मांणता, अति अधिक जाणी एह।।७३।।

व्रज, रास, और श्री देवचन्द्र जी के तन से होने वाली लीला का हमने प्रेमपूर्वक नींद (माया) में आनन्द लिया है, किन्तु श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप द्वारा होने वाली इस चौथी (जागनी) लीला का आनन्द लेते समय हमने इसकी गरिमा को बहुत अधिक जाना है।

एक सुख सुपनना, बीजा जागतां जे थाय।
पेहेली त्रण लीला आ चौथी कही, सुख अधिक एणी अदाय।।७४।।

एक सुख सपने का होता है, जो यथार्थ में नहीं होता है।

दूसरे प्रकार का सुख जाग्रत अवस्था का होता है, जो साक्षात् होता है। इस प्रकार पहले की व्रज, रास, तथा श्री देवचन्द्र जी के तन से होने वाली लीलायें स्वप्न के समान हैं। इस प्रकार यह चौथी लीला जाग्रत अवस्था की है, जिसके कारण इस लीला का सुख सबसे अधिक है।

पेहेलूं द्रष्टे जे अमने आवयूं, तेटला ते मांहें अजवास।
ते अजवास मांहें अमें रमूं, बीजा लोक सहुनो नास।।७५।।

जब पहली बार हम व्रज में आये, तो केवल वहीं पर ब्रह्मलीला हुई और उजाला रहा। वह लीला बेहद में अभी भी हो रही है, अर्थात् मात्र व्रज मण्डल ही अखण्ड हो सका, शेष सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड (सौर मण्डल) का प्रलय हो गया।

हवे चौद लोक चारे गमां, प्रकास करूं साथ जोग।
जीव सहु जगवी करी, टालूं ते निद्रा रोग।।७६।।

अब चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में चारों ओर सुन्दरसाथ के साथ मिलकर तारतम वाणी का प्रकाश करूँगी। मैं तारतम वाणी के प्रकाश में इस ब्रह्माण्ड के सभी जीवों को जाग्रत करूँगी और उनकी अज्ञान रूपिणी निद्रा रोग को समाप्त कर दूँगी।

अमें प्रगट थईने पाधरा, चालसूं सहुए घेर।
वैराट वली ने थासे सवलो, एक रस एणी पेर।।७७।।

हम सब सुन्दरसाथ इस संसार में अपनी पहचान के साथ उजागर होंगे और अक्षर ब्रह्म सहित अपने धाम जायेंगे। इस प्रकार चर–अचर प्राणियों सहित यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एकरस होकर बेहद मण्डल में अखण्ड हो

जायेगा।

हवे ए वचन केम प्रगट पाडूं, पण मारे करवो सहु एक रस।
वस्त देखाड्या विना, वैराट न आवे वस।।७८।।

अब मैं तारतम वाणी के वचनों को संसार में प्रत्यक्ष रूप से किस प्रकार कहूँ? किन्तु मुझे तो ऐसा करना ही होगा क्योंकि संसार के सभी प्राणियों को एकरस करना है, अर्थात् एक अक्षरातीत के प्रति अटूट विश्वास पैदा करना है। सच्चिदानन्द अक्षरातीत की पहचान कराये बिना इस संसार के लोग सत्य में स्थित नहीं हो सकेंगे।

वैराट वस कीधां विना, अखंड थाय केम एह।
अमें रामत जोई इछा करी, मांहें भंग थाय केम तेह।।७९।।

जब तक इस संसार के लोग एक परब्रह्म के प्रति

आस्थावान नहीं होंगे, तब तक वे अखण्ड मुक्ति का अधिकार कैसे पा सकते हैं? हमने इस ब्रह्माण्ड को अपनी इच्छा से देखा है, इसलिये यह शून्य में विलीन कैसे होगा अर्थात् अखण्ड अवश्य होगा।

अनेक थासे आगल, आ वाणीनो विस्तार।
लवलेस कांईक कहूं थावा, अखंड आ संसार।।८०।।

भविष्य में मेरे धाम-हृदय से इस तारतम वाणी का अनेक ग्रन्थों के रूप में अवतरण (विस्तार) होगा। इस संसार की अखण्ड मुक्ति के सम्बन्ध में मैंने यहाँ थोड़ी सी बातें बतायी हैं।

आ वाणी कही में विगते, ते विस्तरसे विवेक।
मारा साथने कही में छानी, पण ए छे घणूं विसेक।।८१।।

मैंने इस तारतम वाणी को प्रत्यक्ष रूप से सबके लिये कहा है। यह सभी लोगों की अपनी विवेकशील बुद्धि में विस्तृत (ग्राह्य) होगी। यद्यपि मैंने सुन्दरसाथ से जागनी के सम्बन्ध में बहुत थोड़ी गोपनीय बातें कही हैं, किन्तु वे बहुत ही महत्वपूर्ण हैं।

संसार सहुना अंगमां, मारी बुधनों करूं प्रवेस।
असत सर्वे सत करूं, मारी जागणी ने आवेस।।८२।।

इस संसार के सभी लोगों के हृदय में मैं अपनी जाग्रत बुद्धि को प्रविष्ट कराऊँगा। इस प्रकार, अपनी जागनी के आवेश तथा प्रियतम के ज्ञान एवं प्रेम में डुबाकर इस मिथ्या जगत को भी मैं अखण्ड करूँगी।

भावार्थ– धाम धनी के प्रति ज्ञान द्वारा एकनिष्ठा तथा प्रेम द्वारा एकत्व की भावना ही जागनी है। इस रस में

डूबना ही जागनी का आवेश प्राप्त करना है। उपरोक्त चौपाई में "आवेश" शब्द को श्री राज जी के आवेश के रूप में नहीं लेना चाहिये।

बुध सरूप अछरनी, आवी अमारे पास।

ब्रह्मांड जोगमाया तणो, तेणे रूदे ग्रह्यो रास।।८३।।

अक्षर ब्रह्म की मूल जाग्रत बुद्धि मेरे धाम-हृदय में आकर विद्यमान हो गयी है। योगमाया के ब्रह्माण्ड में होने वाली रास लीला को अक्षर ब्रह्म ने अपनी जाग्रत बुद्धि द्वारा अपने हृदय (सबलिक के महाकारण) में अखण्ड कर लिया था।

मारा धणी तणे चरणे हुती, आटला ते दाडा गोप।

वचन जे सुकजी तणा, ते केम करूँ हूं लोप।।८४।।

आज दिन तक यह जाग्रत बुद्धि मेरे धाम-हृदय में विराजमान प्रियतम अक्षरातीत के चरणों में गुप्त रूप से विद्यमान थी। अखण्ड लीला के सम्बन्ध में कहे हुए शुकदेव जी के वचनों को मैं कैसे छिपा सकती हूँ।

वृज रास मांहें अमें रमूं, बुध हुती रासमां रंग।
हवे आवी प्रगटी, आंही उदर मारे संग।।८५।।

इस जागनी ब्रह्माण्ड से पूर्व हमने व्रज-रास में लीला की थी। आनन्दमयी रास लीला में अक्षर ब्रह्म की जाग्रत बुद्धि भी हमारे साथ थी। अब इस जागनी लीला में यह मेरे धाम-हृदय में विराजमान प्रियतम अक्षरातीत के चरणों में आ गयी है, जिससे इस संसार में इसके आने की बात प्रकट हो गयी है।

इंद्रावती वाला संगे, उदर फल उतपन।

एक बुध मोटी अवतरी, बीजी ते जोत तारतम।।८६।।

श्री इन्द्रावती जी के धाम-हृदय में विराजमान होने पर दो वस्तुओं का प्रकटन हुआ- एक तो बड़ी बुद्धि और दूसरी तारतम ज्योति।

बंने सरूप थया प्रगट, लई मांहोंमांहें बाथ।

एक तारतम बीजी बुध, ए जोसे सनमुख साथ।।८७।।

दोनों स्वरूप, तारतम ज्योति तथा जाग्रत बुद्धि, प्रत्यक्ष रूप में आलिंगबद्ध हो गये, अर्थात् जागनी कार्य के लिये दोनों स्वरूप एक हो गये। अब इनके संयोग से फैलने वाली जागनी लीला को सभी सुन्दरसाथ देखेंगे।

अछर केरी वासना, कह्या जे पांच रतन।

कागल लाव्यो अमतणो, सुकदेव मुनी धंन धंन।।८८।।

इस संसार में रत्न रूप पाँच महान व्यक्तित्व हैं, जिन्हें अक्षर की पाँच वासनायें (सुरतायें) कहा जाता है। हमारे लिये साक्षी रूप में बेहद का ज्ञान लाने वाले शुकदेव मुनि धन्य-धन्य हैं।

विष्णु मन रामत लई, ऊभो ते बंने पार।

भली भांत भगवान भेला, सनकादिक थंभ चार।।८९।।

आदिनारायण (महाविष्णु) के मानसिक संकल्प से उत्पन्न होने वाले भगवान विष्णु इस ब्रह्माण्ड के दोनों छोरों, अर्थात् पाताल से लेकर वैकुण्ठ तक, का संचालन कर रहे हैं। उनके साथ ज्ञान के चार स्तम्भ रूप सनक, सनन्दन, सनातन, तथा सनत्कुमार भी हैं।

महादेवजीऐं वृजलीला, ग्रह्यो अखंड ब्रह्मांड।

अछर चित चोकस थयो, ए एम कहावे अखंड।।९०।।

अक्षर ब्रह्म के चित्त स्वरूप सबलिक ब्रह्म (सदाशिव चेतन, कारण) में व्रज लीला अखण्ड रूप से हो रही है। उस अखण्ड व्रज की लीला को शिव जी ने ध्यान द्वारा अपने हृदय में ग्रहण कर लिया है। इस प्रकार, ये भी अखण्ड बेहद का ज्ञान देते हैं।

भावार्थ– व्रज लीला की मनोहारिता के कारण अक्षर ब्रह्म ने जाग्रत होते ही उसे अपने चित्त में बसा लिया। इसे ही चौकस (सावधान, सतर्क) रहना कहा गया है।

कबीर साखज पूरवा, ल्याव्यो ते वचन विसाल।

प्रगट पांचे ए थया, बीजा सागर आडी पाल।।९१।।

अक्षर ब्रह्म को व्रज लीला बहुत प्रिय लगी थी, इसलिये

जाग्रत होने पर उन्होंने उसे अपने चित्त सबलिक के कारण में अखण्ड कर लिया। भगवान शिव ने उस अखण्ड व्रज लीला के ब्रह्माण्ड को अपने हृदय में आत्मसात् कर लिया।

भावार्थ– अक्षरातीत की पहचान–सम्बन्धी साक्षी देने के लिये कबीर जी ने अखण्ड धाम की बहुत सी बातें कहीं। इस प्रकार, बेहद का ज्ञान लेकर पाँचों सुरतायें संसार में प्रकट हुईं। संसार के अन्य जीवों के लिये यह मोह सागर दीवार की तरह बाधक बन गया।

अमें बुधने प्रकासी करी, जासूं अमारे घर।
वैकुंठ विष्णु ने जगवसे, बुध देसे सर्वे खबर।।९२।।

हम सब सुन्दरसाथ जाग्रत बुद्धि के तारतम ज्ञान का प्रकाश संसार में फैलाकर अपने मूल घर परमधाम चले

जायेंगे। जाग्रत बुद्धि वैकुण्ठ में भगवान विष्णु को परमधाम, अक्षरातीत, तथा ब्रह्मसृष्टियों की पहचान देकर जाग्रत करेगी।

खबर देसे भली भांतें, विष्णु जागसे तत्काल।

आवसे आणे नेत्रे निद्रा, त्यारे प्रले थासे पंपाल।।९३।।

जैसे ही जाग्रत बुद्धि भगवान विष्णु को बेहद तथा परमधाम का ज्ञान देगी, वे तुरन्त जाग्रत हो जायेंगे। इसके पश्चात् संसार के सभी जीवों की अन्तर्दृष्टि के खुल जाने पर उनके बाह्य नेत्रों में नींद आ जायेगी और उसी क्षण प्रलय हो जायेगा।

छर रामत इछायें करे, अछर आपो आप।

एहेनी वासना पोहोंचसे इहां लगे, ए सत मंडल साख्यात।।९४।।

अक्षर ब्रह्म अपनी इच्छा मात्र से क्रीड़ा रूप में क्षर जगत की रचना करते हैं और पुनः उसका लय कर देते हैं। बेहद मण्डल अक्षर ब्रह्म की प्रत्यक्ष लीला भूमि है, जो अखण्ड है। अक्षर ब्रह्म की पाँचों सुरतायें यहाँ तक पहुँचती हैं।

वासनाओं पांचे वल्या पछी, भेली बुध वसेक विचार।
अछर आंख उघाडसे, उपजसे हरख अपार।।९५।।

अक्षर ब्रह्म की पाँचों सुरताएँ जाग्रत बुद्धि का ज्ञान ग्रहण कर पुनः अपने धाम (बेहद मण्डल) पहुँचेंगी। वहाँ वे जाग्रत बुद्धि द्वारा विशेष रूप से विचार-विमर्श करेंगी। जब अक्षर ब्रह्म अपनी आँखें खोलेंगे, अर्थात् वे अपनी परात्म में जाग्रत हो जायेंगे, तो उस समय सबके हृदय में अपार आनन्द प्रकट हो जायेगा।

त्यारे लीला त्रणे थिर थासे, अखंड एणी प्रकार।

निमख एक न विसरे, रूदे रेहेसे सरूपने सार।।९६।।

इस प्रकार, व्रज, रास, तथा जागनी की ये तीनों ही लीलायें बेहद मण्डल में अखण्ड हो जायेंगी। वे एक क्षण के लिये भी इन लीलाओं को नहीं भूलेंगे। अक्षर ब्रह्म के हृदय में तीनों स्वरूपों (एक वृज बाल को, दूजा रास किशोर, तीसरे बुढ़ापन में भयो भोर) द्वारा की गयी लीलायें सर्वदा ही अखण्ड रहेंगी।

उत्तम कहूं वली ए मधे, जिहां तारतमनो विस्तार।

वासनाओ पांचे बुधे करी, साख पूरसे संसार।।९७।।

इन तीनों लीलाओं में जागनी की लीला ही सर्वोत्तम है, जिसमें तारतम वाणी का फैलाव होने से प्रियतम अक्षरातीत की पूर्ण पहचान हो सकी है। अक्षर ब्रह्म की

पाँचों सुरतायें जाग्रत बुद्धि के इस ज्ञान को ग्रहण कर योगमाया के ब्रह्माण्ड में जायेंगी तथा संसार को इस बात की साक्षी देंगी कि तारतम ज्ञान को लेकर स्वयं परब्रह्म ही इस नश्वर जगत में आये थे।

मारी संगते एम सुधरी, बुध मोटी थई भगवान।
सत सरूप जे अछर, मारे संग पामी ठाम।।९८।।

मेरी सान्निध्यता पाने से अक्षर ब्रह्म की जाग्रत बुद्धि की गरिमा बहुत अधिक बढ़ गयी। अक्षर ब्रह्म के सत्स्वरूप में हमारे जीवों के मुक्ति स्थान में इसका भी निवास होगा।

मारा गुण अंग सहु ऊभा थासे, अरचासे आकार।
बुध वासना जगवसे, तेणे सांभरसे संसार।।९९।।

अन्तःकरण तथा इन्द्रियों से युक्त मेरा यह त्रिगुणात्मक

शरीर भी सत्स्वरूप के पहले मुक्तिस्थान (बहिश्त) में अखण्ड होगा, जहाँ इसे परब्रह्म का स्वरूप मानकर पूजा जायेगा अर्थात् सर्वोच्च श्रद्धा एवं सम्मान की दृष्टि से देखा जायेगा। जाग्रत बुद्धि अक्षर ब्रह्म की वासनाओं (सुरताओं) को भी जाग्रत करेगी, जिससे उन्हें भी इस संसार में होने वाली जागनी लीला की याद बनी रहेगी।

बुध तारतम लई करी, पसरी वैराटने अंग।

अछरने एणी विधे, रूदे चढ्यो अधिको रंग।।१००।।

तारतम ज्ञान का प्रकाश लेकर जाग्रत बुद्धि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में फैल जायेगी। इस प्रकार, अक्षर ब्रह्म के हृदय में इस जागनी लीला का अत्यधिक आनन्द बस जायेगा।

आंहीं तेजनो अंबार पूरा, जोत क्यांहें न झलाय।

एणे प्रकासे सहु प्रगट कीधूं, जिहांथी उतपन ब्रह्मांड थाय।।१०१।।

इस बेहद मण्डल में इतना अपार तेज है कि उसकी ज्योति को किसी भी प्रकार से पकड़ा नहीं जा सकता अर्थात् मापा नहीं जा सकता। तारतम वाणी के प्रकाश ने सृष्टि-रचना के उन सम्पूर्ण रहस्यों को भी उजागर कर दिया कि बेहद (अव्याकृत-सबलिक) से किस प्रकार ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति होती है।

जागतां ब्रह्मांड उपजे, पाओ पलके अपार।

ते सर्वे अमें जोइया, आंही थकी आवार।।१०२।।

अक्षर ब्रह्म की जाग्रत अवस्था में संकल्प मात्र से चौथाई पल में ही अनन्त ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति होती है। इस रहस्य को हमने इस जागनी लीला में तारतम ज्ञान द्वारा

स्पष्ट रूप से देखा (जाना) है।

भावार्थ– नींद (मोह सागर) में मात्र अव्याकृत ही सांकल्पिक रूप से जाता है, मूल अक्षर ब्रह्म नहीं। यही कारण है कि उपरोक्त चौपाई में अक्षर ब्रह्म की जाग्रत अवस्था में सृष्टि बनने का प्रसंग है।

ए लीला छे अति भली, द्रष्टे उपजे ब्रह्मांड।
ए रमे ते रामत नित नवी, एहेनी इछा छे अखंड।।१०३।।

अक्षर ब्रह्म की यह लीला बहुत ही रोचक है, जिसमें उनकी इच्छा मात्र से असंख्य ब्रह्माण्ड बन जाते हैं। सृष्टि की उत्पत्ति, पालन, एवं लय करने की उनकी इच्छा प्रवाह से अनादि और अखण्ड है, अर्थात् वह अनन्तकाल से ऐसा करते आ रहे हैं और अनन्तकाल तक करते रहेंगे। इस प्रकार, ये सृष्टि–रचना की नित्य ही

नई–नई लीलायें करते रहते हैं।

ए मंडल अखंड सदा, अछर श्री भगवान।

प्रगट दीसे पाधरा, आंहीं थकी सहु ठाम।।१०४।।

अक्षर ब्रह्म का यह बेहद मण्डल सदा से अनादि और अखण्ड है। तारतम वाणी के प्रकाश में यहाँ से ही बेहद के सभी मण्डलों (अव्याकृत, सबलिक, केवल, और सत्स्वरूप) का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है।

मोह उपन्यो इहां थकी, जे सुंन निराकार।

पल मेली ब्रह्मांड कीधो, कारज कारण सार।।१०५।।

जिस मोह तत्व को शून्य–निराकार भी कहते हैं, उसकी उत्पत्ति यहीं (अव्याकृत) से होती है। वे पल–भर में ही कारण रूप माया (प्रकृति) से कार्य रूप

ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति कर देते हैं।

ब्रह्मांड बंने अखंड कीधां, तेमा लीला अमारी।

ब्रह्मांड त्रीजो अखंड करवो, ए लीला अति भारी।।१०६।।

अतीत में व्रज एवं रास के जो दो ब्रह्माण्ड अखण्ड हुए हैं, उनमें हमारी ही लीला है। अब यह तीसरा "जागनी ब्रह्माण्ड" भी अखण्ड होना है, जिसकी जागनी लीला की गरिमा बहुत अधिक है।

ब्रह्मांड दसो दिस प्रगट कीधां, अंतराय नहीं रती रेख।

सत वासना असत जीव, सहु विध कही विवेक।।१०७।।

हे साथ जी! दसों दिशाओं में ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति कैसे होती है, यह सब मैंने आपको अच्छी प्रकार से बता दिया है। आपसे नाम मात्र (रत्ती भर) भी छिपाकर नहीं रखा

है। वस्तुतः आत्मा का स्वरूप अखण्ड है, जबकि जीव स्वाप्निक होने से मिथ्या है।

मोह अग्रान भरमना, करम काल ने सुंन।
ए नाम सहु निद्रातणा, निराकार निरगुण।।१०८।।

मोह, अज्ञान, भ्रम, कर्म, काल, शून्य, निराकार, और निर्गुण, ये सभी शब्द नींद के ही पर्यायवाची शब्द हैं।

एटला ते लगे मन पोहोंचे, बुध तुरिया वचन।
उनमान आगल कही करी, वली पडे ते मांहें सुंन।।१०९।।

मन, बुद्धि, चित्त, तथा वाणी की पहुँच इस निराकार मण्डल तक ही होती है। ज्ञानीजन इसके आगे अनुमान से कहकर पुनः निराकार में ही भटक जाते हैं।

सुपनना जे जीव पोते, ते निद्रा ओलाडे केम।

वासना निद्रा उलंघी, अछर पामे एम।।११०।।

जो स्वप्न के जीव होते हैं, वे मोह (निराकार) को भला कैसे पार कर सकते हैं। केवल ब्रह्मसृष्टियाँ एवं ईश्वरी सृष्टियाँ ही निराकार को पार करके अखण्ड धाम में पहुँचती हैं।

एणे द्रष्टांते प्रीछजो, वासना जीवनी विगत।

असत जीव न बोले निद्रा, निद्रा बोले वासना सत।।१११।।

हे साथ जी! आप इस दृष्टान्त से आत्मा एवं जीव की वास्तविकता को समझिए। स्वाप्निक जीव निराकार के परे नहीं जा पाते। मात्र अखण्ड स्वरूपा आत्मायें ही निराकार को पार करती हैं।

जुओ सुपने कई वढी मरतां, आयस न आवे आप।

मारतां देखे ज्यारे आपने, त्यारे धुजे अंग साख्यात।।११२।।

अब आप एक उदाहरण देखिए। स्वप्न में कई लड़कर मर जाते हैं, किन्तु स्वयं किसी को भी दुःख नहीं होता। किन्तु जब किसी के द्वारा स्वयं के ऊपर प्रहार किये जाते हुए देखते हैं, तो स्पष्ट रूप से चौंककर उठ बैठते हैं।

वासना उतपन अंगथी, जीव निद्रा उतपत।

एणी विधे घर कोई न मूके, वासना जीवनी विगत।।११३।।

आत्मायें अक्षरातीत की अँगरूपा हैं, जबकि जीव की उत्पत्ति नींद से हुई है। इस प्रकार, कोई भी अपने मूल घर (परमधाम एवं वैकुण्ठ–निराकार) को नहीं छोड़ सकता है।

चौदे लोक चारे गमां, सहु सतनों सुपन।

एणे द्रष्टांते प्रीछजो, विचारी वासना मन।।११४।।

चारों ओर दृष्टिगत होने वाला चौदह लोकों का यह ब्रह्माण्ड अक्षर ब्रह्म के मन स्वरूप अव्याकृत के सपने का रूप है। आप इस दृष्टान्त से आत्मा एवं जीव के रहस्य को समझ लीजिए तथा अपने मन में आत्मा के स्वरूप पर विचार कीजिए।

अग्नान सत सरूपने, तमे केहेसो थाय केम।

ते विध कहूं सर्वे तमने, उपनूं छे एम।।११५।।

आप यह कह सकते हैं कि अक्षरातीत के सत्य के स्वरूप अक्षर ब्रह्म को किस प्रकार स्वप्न हो सकता है? यह ब्रह्माण्ड किस प्रकार उत्पन्न होता है? उसकी सम्पूर्ण वास्तविकता मैं आपसे बताने जा रही हूँ।

एक तीर ताणी मूकिए, तेणे पत्र कई वेधाय।

ते पत्र सर्वे वेधतां, वार पाओ पल न थाय।।११६।।

जब तीर खींचकर किसी वृक्ष के ऊपर छोड़ा जाता है, तो वह कई पत्तों को छेद डालता है। उन सभी पत्तों को बींधने में उसे चौथाई पल भी नहीं लगता।

पण पेहेलूं पत्र एक वेधीने, तो बीजा लगे जाय।

एमां ब्रह्मांड कई उपजे, वार एटली पण न केहेवाय।।११७।।

इसमें पहले एक पत्ते को बींधकर दूसरे पत्ते को बींधने में जितना समय लगता है, उतने में अनेक ब्रह्माण्ड उत्पन्न हो जाते हैं। इतना भी समय लगा हुआ नहीं कहा जाता।

तो आ वार एकनी सी कहूं, एमां सूं थयूं सुपन।

पण सत भोमनूं असतमां, द्रष्टांत नहीं कोई अन।।११८।।

इस घटना में एक ब्रह्माण्ड के बनने में लगे हुए समय को क्या कहूँ? इसमें सपना कहाँ हुआ? किन्तु अखण्ड धाम की बात को इस मिथ्या जगत में बताने के लिये इसके अतिरिक्त और कोई दृष्टान्त नहीं है।

जोत बुध बंने अम कने, अमे प्रगट कीधां प्रकास।

पूरूं आस अछरनी, मारूं सुख देखाडी साख्यात।।११९।।

मेरे पास तारतम ज्ञान और जाग्रत बुद्धि दोनों ही हैं। इनसे मैंने अखण्ड धाम के ज्ञान को प्रकट किया है। अब मैं परमधाम के सुखों (शोभा, श्रृंगार, एवं लीला) का वर्णन करके अक्षर ब्रह्म की इच्छाओं को पूर्ण करूँगी।

अजवालूं अखंड थयूं, हवे किरणा क्यांहें न झलाय।
जोत चाली पोते घर भणी, बुध अछर मांहें समाय।।१२०।।

अखण्ड परमधाम के ज्ञान का प्रकाश हो गया है। उसकी किरणों को अब किसी भी प्रकार से पकड़ा नहीं जा सकता है (मापा नहीं जा सकता)। जागनी लीला के पश्चात् तारतम ज्ञान की यह ज्योति परमधाम चली जायेगी तथा जाग्रत बुद्धि अक्षर ब्रह्म में प्रविष्ट हो जायेगी।

हवे जिहां थकी जोत उपनी, जुओ तेह तणो प्रकार।
अछरातीत मारा घर थया, इहां तेजना अंबार।।१२१।।

हे साथ जी! तारतम ज्ञान की ज्योति जहाँ से आयी है, उसकी वास्तविकता को देखिए (विचार कीजिए)। अक्षरातीत का परमधाम ही मेरा घर है, जहाँ नूरमयी तेज की अनन्त राशि है।

जोत सर्वे भेली थई, कांई आपने घर बार।

मारा ते घरनी वातडी, केम कहूं मारा आधार।।१२२।।

मेरे प्राणाधार श्री सुन्दरसाथ जी! मेरे धाम–हृदय में परमधाम की सभी ज्योतियाँ (स्वरूपों की शक्तियाँ) समाहित हो गयी हैं। मैं अपने अलौकिक परमधाम की बातों को इस स्वप्नमयी जगत में कैसे व्यक्त करूँ।

अमें घर आंहींथी जोइया, आंहीं अजवालूं अपार।

विविध पेरे एणे तारतमें, देखाड्या दरबार।।१२३।।

इस तारतम ज्ञान द्वारा हमने यहीं (संसार में) बैठे–बैठे अपने दिव्य परमधाम की शोभा एवं लीला को देखा तथा अनन्त ज्ञान को भी प्राप्त किया। इस प्रकार, तारतम ज्ञान ने हमें अनेक प्रकार (ज्ञान, प्रेम, एकत्व, शोभा आदि) से परमधाम का अनुभव कराया है।

अमे विलास कीधां घर मधे, वालासों अनेक प्रकार।
मूने दीधी निध दया करी, श्री देवचंदजी दातार।।१२४।।

हमने परमधाम में अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत के साथ अनेक प्रकार की प्रेममयी लीलाओं का आनन्द लिया है। सद्गुरू धनी श्री देवचन्द्र जी ने मेरे ऊपर अपार कृपा करके परमधाम की निधि रूप तारतम ज्ञान प्रदान किया।

बीचवचन बे वालातणा, आ तेह तणो अजवास।
जे वाव्यूं मारे वालैए, तेणे पूरया मनोरथ साथ।।१२५।।

धाम धनी ने श्री देवचन्द्र जी के तन से मेरे धाम-हृदय में तारतम ज्ञान के एक-दो वचनों को बीज के रूप में बोया। यह तारतम वाणी उसका ही विस्तृत प्रकाश है। इसी से सुन्दरसाथ के मन में परमधाम के सुखों की जो भी इच्छायें थीं, वे पूर्ण हुई हैं।

ससि सूर कई कोट कहूं, कहूं तेज जोत प्रकास।
ए वचन सर्वे मोह लगे, अने मोहनों तो नास।।१२६।।

परमधाम के नूरमयी तेज की ज्योति और उसका प्रकाश ऐसा है कि यदि मैं करोड़ों सूर्यों और करोड़ों चन्द्रमा से उसकी उपमा दूँ, तो भी मेरे ये शब्द निराकार तक का ही वर्णन कर सकते हैं, यथार्थ परमधाम का नहीं। जबकि यह सर्वविदित है कि निराकार (मोह तत्व) का तो महाप्रलय में नाश हो जाता है।

हवे आंणी जिभ्याए केम कहूं, मारा घर तणो विस्तार।
वचन एक पोहोंचे नहीं, मोह मांहें थयो आकार।।१२७।।

अब मैं अपनी इस जिह्वा से अपने परमधाम की शोभा एवं लीला का वर्णन कैसे करूँ। मेरा यह शरीर माया का है, जिसके मुख से निकला हुआ एक भी शब्द निराकार

को पार कर परमधाम में नहीं जा सकता।

मोह ते जे नथी कांईए, सत असंग सदाय।

असत सतने मले नहीं, वाणी पोहोंचे न एणी अदाय।।१२८।।

मोह तत्व तो कुछ है ही नहीं। इसका सर्वदा ही सत्य के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। असत्य का सत्य से मिलन नहीं हो सकता। इस प्रकार, इस संसार के शब्द परमधाम तक नहीं पहुँच पाते हैं।

एक अर्ध लवो पोहोंचे नहीं, मारा घर तणे दरबार।

जोगमाया लगे वचन न आवे, ते पारने वली पार।।१२९।।

इस संसार का आधा अक्षर भी परमधाम–रंगमहल तक नहीं पहुँच पाता है। जब यहाँ के शब्द योगमाया के ब्रह्माण्ड तक नहीं जा पाते, तो उसके परे अक्षर और

उससे भी परे अक्षरातीत के धाम में कैसे जा सकते हैं?

हूं वचन कहूं विध विधना, पण क्यांहें न पामूं लाग।
मारा घर लगे पोहोंचे नहीं, एक लवानो कोटमों भाग।।१३०।।

यद्यपि मैं परमधाम का वर्णन करने में तरह-तरह के शब्दों का प्रयोग करती हूँ, किन्तु मुझे किसी भी प्रकार से सफलता प्राप्त होने का अवसर नहीं मिल पा रहा है। मेरे द्वारा कहे गये शब्दों के एक अक्षर का करोड़वाँ भाग भी मेरे परमधाम तक नहीं पहुँच पा रहा है (यथार्थ वर्णन नहीं कर पा रहा है)।

हूं अंगे रंगे अंगना संगे, करूं पोते पोतानी वात।
बोलतां घणूं सरमाऊं, तेणे न कहूं निध साख्यात।।१३१।।

मैं परमधाम से आयी हुई धाम धनी की अँगरूपा

आत्माओं के साथ अपनी आनन्दमयी लीला की बातें करूँगी। इसे इस स्वाप्निक संसार में कहने में मुझे झिझक (लज्जा) भी लग रही है कि मैं इस शब्दातीत निधि को किस प्रकार व्यक्त करूँ। इसलिये मैं प्रत्यक्षतः यथार्थ रूप में नहीं कह पा रही हूँ।

मारा ते घरनी वातडी, नथी कह्यानो क्यांहें विश्राम।
कहूं तो जो कोई होय बीजो, गाम नाम न ठाम।।१३२।।

अपने मूल घर परमधाम की बातें बताने के लिये ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त अन्य किसी को भी योग्य नहीं समझती। जीवसृष्टि सपने की है, इसलिये ब्रह्मसृष्टि तथा ईश्वरी सृष्टि के समक्ष उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। वस्तुतः इस स्वप्नमयी जीवसृष्टि का न तो कोई अखण्ड निवास है और न अखण्ड मूल घर है।

जिहां नथी कांई तिहां छे केहेवाय, ए बंने मोह ना वचन।

ए वाणी मारी मूने हंसावे, ते माटे थाऊं छूं मुन।।१३३।।

श्री राज जी कहते हैं कि जिस निराकार रूप में परब्रह्म का स्वरूप नहीं है, उसी निराकार को संसार के जीव परब्रह्म का स्वरूप मानते हैं। इस प्रकार, साकार एवं निराकार दोनों को ही परब्रह्म का स्वरूप मानना अज्ञानता है। संसार की इस स्थिति को देखकर मेरे द्वारा कही गयी यह वाणी मुझे ही हँसने के लिये विवश कर देती है कि मैं किस मिथ्या जगत में परमधाम की बातें कह रहा हूँ। इसलिये मुझे कभी–कभी मौन सा होना पड़ता है।

एटलू पण हूं तो बोलूं, जो साथने भरम नो घेन।

वचन कही विधोगते, टालूं ते दुतिया चेन।।१३४।।

सुन्दरसाथ को माया के नशे ने अपने अधिकार में कर लिया है, इसलिये मुझे इतना कुछ कहना पड़ता है। यही कारण है कि श्री इन्द्रावती जी के तन से तारतम वाणी का विधिवत् अवतरण करके मैं द्वैत के बन्धन को समाप्त कर देता हूँ।

इंद्रावतीसों अतंत रंगे, स्याम समागम थयो।
साथ भेलो जगववा, इंद्रावतीने में कह्यो।।१३५।।

हब्शा में अनन्त प्रेम के साथ श्री इन्द्रावती जी का मुझसे मिलन हुआ अर्थात् उन्होंने अपने विरह–प्रेम से मुझे पा लिया। सब सुन्दरसाथ को सामूहिक रूप से जगाने के लिये ही श्री इन्द्रावती जी के धाम–हृदय से मैंने यह कलश ग्रन्थ कहा है।

प्रकरण ।।१२।। चौपाई ।।५०६।।

।। कलस गुजराती – तौरेत।।

।। सम्पूर्ण।।